ISSN : 2321-3922
अक्टूबर– 2018
BIHHIN05394
वर्ष – 4 अंक–14
www.susambhavya.com

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–दिसम्बर 2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–14

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–14
अक्टूबर–दिसम्बर – 2018

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी– 2019 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

अक्टूबर–दिसम्बर 2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
आलेख	अज्ञेय की साहित्य यात्रा	डॉ.सिन्धु	6
आलेख	समय से आगे लेखिका मृदुला गर्ग	राजीव आनंद	8
आलेख	महिला स्वतंत्रता सेनानी के बलिदानों का आलोक	मंजु गुप्ता	9
समीक्षा	गिरती दीवारें	डॉ0 पंकज कर्ण	10
लघुशोध	सूफी कवि : साझी संस्कृति का परिचायक	डॉ. वसीम राजा	11
लघुशोध	रहीम एक सांस्कृतिक धरोहर	डॉ. अब्दुस सलाम	13
आलेख	अंगिका लोक भजन में गंगा मइया	शतदल मंजरी,	17
आलेख	यादगार क्षण सात जनवरी दो हजार सात	मनोरंजन सहाय सक्सेना	19
कहानी	मेरे चन्दा	हरिप्रकाश राठी	23
कहानी	शाहजी	डॉ. रजनीकान्त	26
आलेख	जीवन में रिश्तों का औचित्य	डॉ. कविता विकास	29
शोध आलेख	नारी–स्वतंत्रता का सामाजिक संदर्भ...	सुभाषचन्द्र झा,	30
कविता	भारत	केदारनाथ सविता	33
कविता	मन का पर्यावरण / दर्द का उपहास	डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी	33
कविता	बावली आँधी / ख्वाब की जिद	शृंखला भारती,	33
समीक्षा	पत्थर तोड़ती औरत : मनोज चौहान	दयानन्द जायसवाल	34
लोककथा	बहुरानी	सीमा असीम सक्सेना	35
ग़ज़लें	चार ग़ज़लें	अभिनव अरुण	36
परख	सुसंभाव्य : सौंदर्यपूर्ण साहित्यिक अभिव्यक्ति	सुभाषचन्द्र झा	37
आलेख	जल है तो कल है	शंकर लाल माहेश्वरी	38
लघुकथा	गरीब	डॉ. पंकज साहा	39
आलेख	लोकचेतना में स्वाधीनता की लय	आकांक्षा यादव	40
कविता	विश्व सुलगता जा रहा है	अचल भारती	43
आलेख	मैं हिन्दी बोल रही हूँ	ज्ञानचंद मर्मज्ञ	44
कविता	ऐसी दुनिया	विकास	44
कविता	यही तो रोना है / कूड़ा बीनती लड़की	मिथिलेश कुमार	45
कविता	अल्फाज / थोड़ा–सा अपनापन	कल्पना मिश्रा बाजपेई	45
कविता	पत्थर की लकीर	ज्योति सिन्हा	45
कहानी	मरकत हरापन	रजनी वर्मा बस्तरिया	46
लोकवाणी			

अग्निवेश और फिर.....

भीड़
अब इस देश को डराने लगा है
भीड़ सड़कों पर उबल
मदारियों की डोर के छोर पर
नाच बंदरिया नाच हो
उछालें मारतीं
मूल्यों के इंकिलाबियों की
हत्या और फिर हत्या को है

अभी–अभी तो मौत देती भीड़ के
बर्बर घेरे से बच निकला है
स्वामी अग्निवेश
और इस शृंखला की बढ़ती कड़ी में
कौन फिर और फिर...
भीड़ के घेरे में होगा देश मौन है

धर्म, राजनीति व सियासी हरम के
कुत्सित मंसूबे के मदारियों के
नाच बंदरिया नाच के डुग–डुग में
मौत के खेल क्या चलते ही रहेंगे?

सवाल है लोकतंत्र
भीड़ की बंदरिया तो सजा पायेगी
पर देश की हत्या में निरत
देशद्रोही मदारियों को
इस मुर्दा लोकतंत्र में
सजा कौन देगा?

यह तो इतिहास होने का
कोई विप्लव नहीं
जो समय चक्र में
देश के साथ खड़ा हो

डॉ.गिरिजाशंकर मोदी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हमारी व्यवस्था व्यवस्थित ढंग से चले, इसके लिए भी व्यवस्था करने की जरूरत होती है, क्योंकि इसके बिना हमारा सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी संभव नहीं रहता। ऐसे में साहित्यकार अपने आधारभूत मूल्यों के निर्णयोपरांत वांछित दिशाएँ, वांछित परिणामों और हितों की टकराहट को मानवीय दृष्टि से देखता है, वह इसलिए कि मानव–जीवन की लंबी यात्रा में, सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में उसको सही दिशा पर ले जाने का श्रेय साहित्य को होता है। साहित्य संस्कृति और इतिहास की व्याख्या साहित्यकार दार्शनिक दृष्टिकोण अथवा बौद्धिक आधार पर चेतन या अवचेतन में बसे सहानुभूतियों से प्रभावित होकर करते हैं। कोई भी साहित्य तबतक बेईमान है, जबतक साहित्यकार अपनी उस असीम रचनात्मक क्षमता को अधिक–से–अधिक उच्च स्तर तक पहुँचाने में मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध न हो। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियाँ, विसंगतियाँ, विकृतियाँ, अभावों, विषमताओं, असमानताओं आदि के बारे में लिखता है, इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। साहित्य जन हित के लिए होता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्ग दर्शन करता है, उसकी विचारधारा को गतिशीलता देने का काम करता है।

आज विभिन्न देशों के बीच साहित्यिक तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान ने जीवन–मूल्यों में भारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। हजारों मीलों की दूरी पर बसनेवाले मनुष्यों के सुख–दुःख, अश्रु–पीड़ा, हर्ष–उल्लास और संवदेनाओं का अनुभव अनूदित कृति या स्वस्थ रचना के माध्यम से होने लगा है। इन माध्यमों के द्वारा जहाँ एक ओर पेशेवर रिश्तों में दृढ़ता आई है, वहीं दूसरी ओर मानवीय संबंधों की गहरायी, सुख–दुख, परस्पर संवाद तथा अनुभूति बोध को भी जगाया है। अब साहित्य के कारण व्यक्ति अथवा राष्ट्र का संकट केवल उन तक सीमित न रहकर वैश्विक संकट के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है तथा साहित्यकारों के द्वारा व्यक्ति तथा राष्ट्र की समस्या का अंतर्राष्ट्रीय समाधान खोजा जाने लगा है। इसलिए आज के ग्लोबलाइजेशन युग में सृजनात्मक साहित्य का महत्व और भी बढ़ता जा रहा है। यदि साहित्य न होता तो विश्व संस्कृति की इतनी बड़ी और महत्वपूर्ण परंपरा विकसित नहीं होती। संसार में जिन अनेक प्रकार के प्रभावों की चर्चा की जाती है, उन सबों में साहित्य का प्रभाव अचूक और अकाट्य माना गया है। यह हृदय से निकलकर सीधा हृदय पर प्रभाव डालता है, ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि हम अच्छे साहित्य की ही रचना और अध्ययन करें।

साहित्यकार खुद को जलाकर समाज की पीड़ा महसूस करते हैं और उससे दूसरों को रू–ब–रू कराते हैं, फिर भी यदि आज का युवावर्ग अगर किताबों से दूर हो गया है, तो इसका सीधा मतलब यही है कि उसे उसके हिसाब से विषय–वस्तु नहीं मिल रहा है और साहित्यकार अपनी बनायी एक आभासी दुनिया में रचना करने को प्राथमिकता दे रहे हैं, जिसे कुछ पुरस्कार या शासकीय वाहवाही मिल जाय। ऐसे में, बेवज़ह की राजनीति से साहित्य का बेड़ा गर्क हो सकता है। आज राजनीतिक दलों में सांस्कृतिक विमर्श का कोई अर्थ नहीं रह गया है। संस्कृति तो यूरोपीय सिद्धांतों से जकड़ा जा रहा है। समकालीन वैचारिक प्रतिफल या सांस्कृतिक अवमूल्यन के रूप में इसे देखा जा सकता है। साहित्यकार ही इस बारीकी को समझ सकते हैं परिवर्तन की आहट को जितनी संवेदनशीलता से एक साहित्यकार महसूस कर लेता है, शायद कोई अन्य नहीं। उनमें एक बौद्धिक व नैतिक साहस का भाव होता है। उन्हें विश्वभर में चल रहे सांस्कृतिक आंदोलन पर अपनी दृष्टि रखनी होती है। साहित्य तो विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। इसलिए राजनीति में भी साहित्य का संबल हो।

आज लेखक अपने बारे में, अपनी सफलता के बारे में जितना सोचता है, उतना समाज के प्रति व्यापक दृष्टि या विश्वसृष्टि कहाँ रखने का प्रयास करते, जो लोकमानस में, पाठक समुदाय में व्यापक असर छोड़ सके। आज भी पाठकों को तलाश है, प्रेमचंद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, रेणु, नागार्जुन, यशपाल, मोहन राकेश, जयशंकर, महावीर प्र० द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, केदारनाथ, सुभद्रा कुमारी चौहान, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गुलेरी, पंत, नेपाली, दिनकर, माखनलाल, बच्चन, महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, निराला आदि की।

साहित्यकार के अंतस् में युगचेतना होती है और यही चेतना साहित्य–सृजन का आधार बनती है। साहित्यकार का कर्म ही है कि वह ऐसे साहित्य का निर्माण करे, जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व बन्धुत्व और सद्भाव के साथ हाशिये के मानवीय जीवन को ऊपर उठाने में उसकी मदद कर सके। श्रेष्ठ साहित्य भावनात्मक स्तर पर व्यक्ति और समाज को संस्कारित करता है।

'सुसंभाव्य' में अनुभूति की तीव्रता, भावना का प्राबल्य, सार्थक, संभावनाशील चिंतन एवं सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के विचारों को गहनता के साथ अभिव्यंजित की जाती रही है। इसलिए की इन प्रसिद्ध रचनाकारों का विचार जन साधारण तक पहुँचे तथा उनके सुप्त भावनाओं को दिशा–निदेश किया जा सके। इस प्रकार यह पत्रिका 'सुसंभाव्य' साहित्यिक योजनाओं को शीर्ष पर पहुँचाने का उत्कृष्ट माध्यम है। अपने युग के प्रति जागरुक रहकर साहित्य की सेवा करनेवाली इस पत्रिका को आपका स्नेह–सानिध्य मिलता रहे।

आभार सहित–

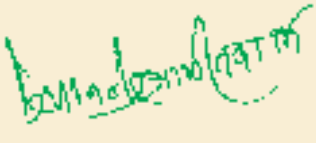

आलेख

अज्ञेय की साहित्य यात्रा

डॉ.सिन्धु
टी.आई. सेंट पीटर्स कॉलेज,
कोलेंजरी एरनाकुलम, केरल

अज्ञेयजी अपने समय के महान साहित्यकार थे, लेकिन हिन्दी के कुछ वरिष्ठ साहित्यकार अज्ञेयजी के जीवनकाल में उतना महत्व नहीं दिया, जितना उन्हें मिलना चाहिए था। किन्तु वे अब पछता रहे हैं, उनके महत्व को जाननेवाले साहित्यकारों का एक अलग वर्ग भी था, जिसमें वरिष्ठ आलोचक एवं साहित्यकार रमेशचन्द्र शाह का नाम आता है, उनके अनुसार अज्ञेयजी उत्तर छायावाद युग के महत्वपूर्ण कवि थे। उनकी कविता में प्रकृति और प्रेम विभिन्न रूपों में सामने आता है, उन्होंने कहा है कि हिन्दी काव्य में जयशंकर प्रसाद के बाद प्रकृति और प्रेम के विभिन्न रूपों पर सबसे अधिक अज्ञेय ने ही लिखा है। निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि अज्ञेय का प्रभाव और आकर्षण आजतक किसी न किसी रूप में बना हुआ है। अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा और मृदुल, शालीन, गंभीर और शान्त व्यक्तितव के द्वारा अज्ञेयजी जगत पर अपनी अमिट छाप भी डाल रहे हैं। वे अपने समकालीन साहित्यकारों को अपनी रचनाओं द्वारा चुनौती दे रहे थे। साथ ही साथ युवा पीढ़ी को वे जरूर प्रेरणास्रोत रहे हैं। राहों के अन्वेषी अज्ञेयजी जीवन भर नयी–नयी राहों के अन्वेषण में लगे रहे। उन्होंने कविता और कहानी लेखन से साहित्य जगत में प्रवेश किया तो आगे उन्होंने कहानी विधा को छोड़ ही दिया, लेकिन कविता और कहानी विधा से लेकर उपन्यास, निबंध, शोध, आलोचना, यात्रा साहित्य, पत्रकारिता, नाटक आदि विधाओं में भी उन्होंने तूलिका चलायी। अनुवाद, संपादन और आयोजन भी उनकी निपुणता के परिचायक हैं। तारसप्तक के माध्यम से वे अपनी निपुणता की अमिट छाप हिन्दी काव्य जगत पर छोड़ ही दिया है।

अज्ञेयजी का जन्म 7 मार्च, 1911 को उत्तरप्रदेश के देवरिया जनपद के कसया नामक ऐतिहासिक स्थान में एक पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। अपने पिताजी से ही हिन्दी भाषा का संस्कार उन्हें मिला था। अंग्रेजी भाषा का गहरा ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी उन्होंने अंग्रेजी साहित्य को अपनी रचना का माध्यम नहीं चुन लिया था। उनके प्रमुख कविता संग्रह हैं–भग्नदूत, इत्यलम, हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु, रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के द्वार पर, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा, महावृक्ष के नीचे, और ऐसा कोई घर आपने देखा है?आदि

उनके कहानी संग्रह हैं–विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप आदि। उनके उपन्यास हैं–शेखर की जीवनी, नदी के द्वीप, अपने अपने मजहबी आदि। उनके यात्रा साहित्य हैं–अरे, यायावर, रहेगा याद?, एक बूँद सहसा उछली आदि। उनके निबंध संग्रह हैं–सबरंग, त्रिशंकु, आत्मनेपद, आधुनिक साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल आदि। संस्मरण–स्मृति लेखा, डायरियाँ–भवंती, अंतरा शाश्वती आदि। विचार गद्य–संवत्सर, नाटक–उत्तर प्रियदर्शी।

उनका समय काव्य सदानीरा नाम से दो खंडों में संकलित हुआ है। सारे निबंध 'सर्जना और संदर्भ' तथा 'केन्द्र और परिधि' नामक ग्रंथ में संकलित हुए हैं, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान, नया प्रतीक आदि विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया। तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक जैसे काव्य संकलनों का संपादन कार्य किया। पुष्करिणी, रूपाम्बरा नामक काव्य संकलनों का भी संपादन किया। कुट्टी चातन नाम से अनेक ललित निबंध लिखे थे। वे सफल अध्यापक भी थे। सन् 1961 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई थी। आँगन के पार द्वार कविता संग्रह पर उन्हें अकादमी पुरस्कार मिला। कितनी नावों में कितनी बार कविता संग्रह पर उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। 1968 में उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में साहित्य वाचस्पति की और 1971 में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से डी.लिट्. की मानद उपाधि मिली। बाद में उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती पुरस्कार प्राप्त हुआ। ऐसे कालजयी रचनाकार के जन्मसदी वर्ष पर उन्हें सम्मानपूर्वक स्मरण करना और यात्रा साहित्य के क्षेत्र में उनके विशिष्ट योगदान को रेखांकित करना इस प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य है।

1955 में यूनेस्को के निमंत्रण पर अज्ञेय यूरोप भ्रमण पर चले गये। एक बूँद सहसा उछली इस यात्रा की परम उपलब्धि है। अरे! यायावर, रहेगा याद?में भारत का वर्णन है। अज्ञेय जी की यात्राएँ भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य के आदान–प्रदान के महत्तर उद्देश्य से प्रेरित रही है। उपर्युक्त दो वृत्तान्तों के अलावा अभी उनके यात्रा वृत्तान्त की सूची में चार छोटे यात्रा वृत्तांतों का उल्लेख भी मिलता है–बीसवीं सदी का गोलोक, एक बूँद सहसा उछली का एक अंश है। बाकी तीनों बहुत ही छोटे हैं, वे केवल यात्रा स्मरण ही कहने योग्य हैं, उसमें कोई वृत्तांत नहीं है।

अरे! यायावर याद रहेगा?यात्रा वृत्तांत में की गयी यात्राएँ स्वतंत्रता प्राप्ति व देश विभाजन से पहले की यात्राएँ हैं। पुस्तकाकार प्रकाशन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ, इसलिए वर्णित जगहों में कुछ अंश अभी पाकिस्तान का हिस्सा है। इस पुस्तक की भूमिका में अज्ञेयजी ने व्यक्त किया–''प्रस्तुत बौरा एक व्यक्ति की यात्रा का बौरा होता है और वह यात्रा जितनी बाहरी होती है, उतनी ही भीतरी भी। यात्रा का विवरण जितना स्थूल भू विस्तार से संबंधित होता है, उतना ही सूक्ष्म मानसिक भूगोल से भी।'' पाठक किस प्रकार का व्यक्ति होना चाहिए, इसका निर्देश अज्ञेयजी एक बूँद सहसा उछली में देते हैं–पाठक संवेदनशील हो, पाठक उदारमना हो, पाठक अनुभव के प्रति खुला हो, पाठक जीवन के प्रति प्रेम करता हो।

परशुराम से तूर्खम, किरणों की खोज में, देवताओं में अंचल, मौत की घाटी में, एलुरा, माझुली, बहता पानी निर्मला, सागर सेवित मेघ आदि यात्रा संस्मरणों का संकलन है–अरे! यायावर याद रहेगा?कहीं–कहीं यात्रा संस्मरण यात्रा वृत्तांत भी बन जाता है। परशुराम से तूर्खम में पूर्व असम के परशुराम कुंड से लेकर गुवाफल और कामाख्या देवी के मंदिर के कारण प्रसिद्ध गौहाटी, असमिया रेशम की बड़ी मंडी पलाशवाड़ी, कोच जाति की राजधानी कूचविहार, सिकंदरा, रुनकत्ता में सूरदास कुटी, सिकंदर और पुरु की युद्धभूमि चिल्लियांवाला तक्षशिला, कश्मीर, जंगली नर्गिस के लिए प्रसिद्ध एबटाबाद, सिन्धुतट, पेशावर, खैबर तक का वर्णन है। 'किरणों की खोज में' शीर्षक में कोस्मिक किरणों की खोज के लिए गुरु के साथ की गई यात्रा का वर्णन हैं, उनके साथ बड़ा जोशी था और छोटा जोशी भी। गुरु भौतिक विज्ञान के अध्यापक थे। भौतिक विज्ञान का शोध गुरु के जीवन की साधना थी। वे कश्मीर के कोंसर्नाग जाकर अपनी खोज में लगे रहना चाहते थे। गूजरों के देश में बीते तीन सप्ताह का वर्णन है यह। 'देवताओं के अंचल में' शीर्षक में कुलु मनाली का वर्णन है। 'मौत की घाटी में' शीर्षक में भारत की सुन्दरतम प्रदेश मनाली में लोक सभ्यता जितनी पतित हो गई है, उसी का वर्णन किया गया है। एलुरा में गुफाओं का वर्णन है। माझुली असमिया सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बहता पानी निर्मला में असम के सोनारी नामक गाँव में हुई बाढ़ का वर्णन है। सागर सेवित मेघ मेखलित में कन्याकुमारी का वर्णन है। 'अरे! यायावर, रहेगा याद?' के शीर्षक को स्वयं अज्ञेयजी व्यक्त करते हैं–

''पार्श्व गरी का नम्र चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों–सी
बिछी पैरों में नदी, ज्यों दर्द की रेखा
विहग–शिशु मौन नीड़ो में
मैं ने आँख भर देखा
दिया मन को दिलासा पुन: आऊँगा
भले ही बरस दिन–अनगिन युगों के बाद
क्षितिज ने पलक–सी खोली
तमककर दामिनी बोली
'अरे! यायावर, रहेगा याद?''

किरणों की खोज के लिए जाते वक्त रास्ते में हरिबल का जलप्रपात देखा। उपर्युक्त कविता अंश का उत्तर भी स्वयं अज्ञेयजी देते हैं–''स्वर के साथ–साथ प्राप्त का चित्र अंतस् में बस गया था और मैं मनो मुड़–मुड़कर एक बंधु को आश्वासन दे रहा था कि फिर आऊँगा, फिर आऊँगा, ... वह 'फिर आना' नहीं हुआ है, न जाने कभी होगा कि नहीं; किन्तु वह प्रतिश्रुति झूठ नहीं है, क्योंकि वह मनोभाव झूठ नहीं है। 'फिर आना' वास्तव में कभी होता ही नहीं, क्योंकि काल की दिशा में लौटना कभी नहीं होता। प्रत्येक आना नया आना होता है, घटना की आवृत्ति होती है, अनुभूति की आवृत्ति, पुनरावृत्ति केवल स्मरण में है...।''पृ0 80

'अरे! यायावर, रहेगा याद?' में अज्ञेयजी के बचपन की ओर भी संकेत है। अपनी आस्था, कला और संस्कृति के प्रति प्रेम, विज्ञान में रुचि आदि का संकेत भी इसमें मिलता है। परशुराम कुंड की रीति, उसकी प्रधानता, सदिय जगह के नेम की व्युत्पत्ति की मनोरंजक कथा, जोगीगुफा नाम का इतिहास, कोचुविहार का वर्णन आदि अत्यन्त मनोहर ढंग से किया है। इन यात्राओं के दौरान काव्य का विस्तृत पटल भी स्पष्ट होता जाता है। अपने साथ यात्रा करनेवालों का भी विशेष वर्णन इसमें मिलता है। एलुरा की गुफाएँ देखकर जहाँ लेखक औरंगजेब से प्रश्न करता है, वहाँ उनकी प्रसिद्ध कविता असाध्यवीणा की छाया है–

''पार क्या तुम नहीं जानते थे कि साधना का एक अहंकार भी होता है, जो साधना को ले डूबता है, क्योंकि जहाँ अहंकार का विसर्जन नहीं है, वहाँ विनय नहीं है और जहाँ विनय नहीं है, वहाँ साधना कैसे हो सकती है?ईश्वर के आगे झुकने से ही तुम अपने समकक्ष मानव प्राणी से अपने को ऊँचा समझाने के अधिकारी बनते थे, जो आध्यात्मिक दर्प है–जो अहंकार का सबसे विघातक रूप है। ईश्वर की क्षुद्रतम रचना के आगे विनयी होना ही ईश्वर के आगे विनयी होना है।''पृ0 148

एक बूँद सहसा उछली अज्ञेयजी की यूरोप यात्रा का वर्णन है। इसमें यूरोप की अमरावती : रोम, यूरोप की पुष्पावती : फिरेंजे, यूरोप की छत: स्विटजरलैंड, यूरोप का स्नायुकेन्द्र : बर्लिन आदि से लेकर प्राकृतिक दृश्यों तथा विद्वज्जनों से हुई मुलाकात एवं उनके स्थानों का वर्णन है। यूरोप के पुराने शहरों की गलियों में सुंदरता का वर्णन उन्होंने किया है। उन्हें लगा कि रोम यूरोप का सबसे स्वच्छ शहर नहीं है। पाठकों के लिए भी वह वर्णन उतना सुखद अनुभव नहीं देता कि जब वे अन्य शहरों में घूमकर वापस रोम पहुँच गए तो उन्हें लगा–''वैसे गंदे जान पड़ते हैं, जैसे इटली से लौटकर भारत के शहर।'' पृ0 7 बार–बार वे भारत से तुलना करते हैं। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की विभिन्नताओं को पहचानने की कोशिश वे करते हैं।

यूरोप की पुष्पावती : फिरेंज वहाँ के फूलों के कारण बहुत आकर्षक है, लेकिन वहाँ के सामान्य जनों का व्यवहार भी लेखक को सुखद अनुभव प्रदान किया। उनकी भद्रता, सहजता, शालीनता, हँसमुख प्रकृति आदि लेखक को आकृष्ट किया। फिरेंजे का पुराना पुल, बोबोली का उद्यान, सांता क्रोचे गिरिजाघर आदि प्रसिद्ध हैं, जो स्थापत्य कला के साथ–साथ ऐतिहासिकता के कारण भी महत्व रखता है। सांता क्रोचे गिरिजाघर के मैकनांजेलो की समाधि है और उसी के सम्मुख गैलिलियो की समाधि है। प्रसिद्ध कवयित्री एलिजाबेथ बारेट ब्रौनिंग का कथन लेखक के मन में आता है–''फ्लोरेंस क्या है, इसका वर्णन करने में मनुष्य की या कवि की वाणी सहज ही असमर्थ हो सकती है।'' यूरोप की छत : स्विट्जरलैंड देखते समय लेखक को नहीं लगा– ''स्विटजरलैंड यूरोप का कश्मीर है या कि कश्मीर भारत के स्वित्जेर्ले है।'' पृ. 33 उन्हें लगा कि कश्मीर के कुछ प्रदेशों को साबुन से धो लें तो कुछ–कुछ स्विटजरलैंड–से लगने लगेंगे। वह छीलों का देश साफ सुधार भी है, वहाँ पर्यटन उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। वह राजनैतिक संपर्क और आदान–प्रदान का केन्द्र भी है। वह बहुभाषी देश है। लेखक को लगा कि वहाँ की जीवन परंपरा की बुनियाद है–'सत्य, दया और स्वतंत्रता' जो मानव संस्कृति की ही बुनियाद है। यूरोप का स्नायु केंद्र है बर्लिन। पश्चिमी बर्लिन और पूर्वी बर्लिन में जो वैषम्य है, उनका उल्लेख लेखक करते हैं। वे लिखते हैं–''पश्चिमी बर्लिन के चौके में उद्यान है, बच्चे खेलते हैं, अच्छी पोशाकों में स्त्रियाँ घूमती हैं, हँसी–मजाक के स्वर सुनायी पड़ते हैं। पूर्वी बर्लिन के चौके अकेले और सपाट और सूने होते हैं।'' पृ0 185 ''पश्चिम में क्रय–विक्रय पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।'' पृ. 186 साथ ही साथ अज्ञेय भारत से यूरोप की तुलना करते हैं। ''यूरोप की रुचि शुद्ध सामाजिक, सांस्कृतिक प्राचीन की ओर अधिक है, जबकि हमारी रुचि पौराणिक–ऐतिहासिक की ओर है।'' पृ. 188 इनके अलावा इसमें रोम के एक युवा विमानचालक कवि लाउरो ड बोसिस के संदेश का विस्तृत वर्णन 'विद्रोह की परंपरा में' शीर्षक दिया गया है। उसकी मृत्यु के पहले लिखा गया यह संदेश फाज़िज्म को परास्त करने के लिए जीवन बलिदान देने की आवश्यकता पर जोर देता है। 'खुदा के मसखरे के घर : असीसी' शीर्षक में संत फ्रांसिस तथा उनका वासस्थान असीसी का वर्णन है। लेखक की राय में भारत के बाहर कहीं रहने का विकल्प उन्हें दें तो पहले वे असीसी को चुन लेंगे, दूसरो विकल्प फिरेंजे को देंगे। 'एक यूरोपीय चिंतक से भेंट' शीर्षक में कार्ल यास्पर्स से की गई मुलाकात का वर्णन हते। लेखक को आशा थी कि कार्ल यास्पर्स से भेंट होने पर उनकी बहुत सारी शंकाओं का निवारण होगा। डेढ़ घटा उनसे बातचीत करने के बावजूद भी उनकी शंकाएँ वैसे ही बनी रहीं। समय की अपर्याप्तता के कारण उन्हें लौटना पड़ा। वे निराश होकर लिखते हैं–''मैं अपने प्रश्नों के साथ ही वहाँ से लौट आया हूँ। मैं यास्पर्स से बहुत से प्रश्न पूछना चाहता हूँ। यास्पर्स से ही नहीं, बहुत–से दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, चिंतकों, लेखकों, चिंतामुक्तों–संतों, आवारों और पागलों से भी बहुत–से प्रश्न पूछना चाहता हूँ। सबसे मुझे अनुमति नहीं मिली है, पर जिनसे मिली भी है, उनसे भी अभी पूछ नहीं पाया हूँ।'' पृ. 47 लेखक पेरिस का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पेरिस कला प्रेमियों का देश है, वहाँ सबको स्वतंत्रता ज्यादा मिल गई है, लेकिन वहाँ भीड़ में रहते हुए भी व्यक्ति को अकेलापन महसूस होता है। बेनेडिक्टी संप्रदाय के 'पेयर मुआर की कुटिया' का वर्णन बड़ी बारीकी से लेखक ने किया है, उसी कुटिया में लेखक रहते थे। 'बालू की भीत पर' शीर्षक में हालैंड और नीदरलैंड का वर्णन मिलता है। वे लिखते हैं कि हालैंड का 'क्रोलर मूलर म्यूजियम' देखने मात्र के लिए भी हालैंड आना सार्थक रहेगा।

अपनी पूरी यूरोप यात्रा के दौरान वे यूरोप की संस्कृति से भारत की सांस्कृतिक परंपरा की तुलना करना चाहते हैं। वे भारत की संस्कृति पर गर्व करते हैं। साथ ही साथ सभ्यता को उत्तरोत्तर विकसित करके उत्कृष्ट रूप तक पहुँचाने की कोशिश है, उनकी यह यात्रा। राहों की अन्वेषी अज्ञेयजी का मकसद शायद यही होगा कि जिन राहों का अन्वेषण उन्होंने किया है, उन्हीं का हम न करें; जिन राहों का अन्वेषण उन्होंने न किया, आगामी पीढ़ी उन्हीं के अन्वेषण में लगे रहें।

आलेख

समय से आगे
लेखिका मृदुला गर्ग

राजीव आनंद
न्यू बरडंगा,गिरिडीह
(झारखंड) 9471765417

आखिरकार 'मिलजुल मन' के लिए मृदुला गर्ग को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल गया, यद्यपि देर से मिला। एलिस मुनरो को भी देर से साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला था। पिछले वर्ष देर से पुरस्कार मिलना इस बात का द्योतक है कि पुरस्कृत लेखिका ने अपना लोहा मनवा ही लिया। मृदुला गर्ग साहित्य अकादमी पुरस्कार पानेवाली तीसरी लेखिका, कृष्णा सोबती तथा अलका सरावगी के बाद हो गयी है। मृदुला गर्ग को पुरस्कार मिलना साहित्य अकादमी में चली आ रही पुरुष वर्चस्व एवं कवियों को पुरस्कृत किये जाने की परंपरा का भी टूटना है, जो स्वागत योग्य है। इसलिए हिन्दी हल्कों में मृदुला गर्ग को पुरस्कार मिलने का हार्दिक स्वागत हुआ है। मृदुला गर्ग के समग्र लेखन यथा सात उपन्यासों में से पहली से सातवें उपन्यासों तथा 'उसके हिस्से की धूप', बंशज, चितकोबरा, अनित्य, मैं और मैं, कठगुलाब और मिलजुल मन का विहंगावलोकन भी अगर किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि मृदुला जी लीक से हटकर लिखती रही और उनकी रचनाएँ अपने समय से आगे की रचनाएँ हैं। मृदुला गर्ग के यहाँ पति,पत्नी और प्रेमी के पारस्परिक संबंधों को लेकर अपने समय से एक शताब्दी आगे की बात करती है। मृदुला जी के शुरुआती समकालीन साहित्यकारों, कुछ जैसे जैनेन्द्र को छोड़कर नहीं चाहते थे कि साहित्यिक यथास्थिति को किसी की रचना नष्ट कर दे और जब 'चितकोबरा' जैसी रचना आयी तो मृदुला गर्ग को जेल भी भुगतनी पड़ी। किसी स्त्री लेखिका को अभिव्यक्ति के कारण जेल जाना पड़ा हो यह सिर्फ भारत के हिन्दी मठाधीशों द्वारा ही कर पाना संभव था। अपने उपन्यास चितकोबरा में उठाये गये 'देह विमर्श' के मद्देनजर साहित्यिक पत्रिका सारिका में इस उपन्यास के दो पन्नों को अलग–अलग छापा गया और कुछ साहित्यकारों के विरोध के कारण मृदुलाजी को जेल भी जाना पड़ा। मृदुला गर्ग ने जेल से आने के बाद और भी नीडरता से वहीं सब अभिव्यक्त करती रही, जिसके लिए उन्हें एक बार जेल जाना पड़ा, इसका सबूत चितकोबारा से मिलजुल मन तक में फैला पड़ा है। मृदुला गर्ग को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना न सिर्फ उनकी नजरिए का सम्मान है, अपितु आज भी उन्हें जेल भेजनेवाले साहित्यकारों जिनमें स्त्री साहित्यकार भी शामिल थी, को सबक भी है कि समय से आगे के रचनाकार को समझने के लिए खास दिल और मस्तिष्क की जरूरत है। मैंने जब चितकोबरा 1980 के दशक में पढ़ा था, तभी समझ गया था कि लेखिका की सोच अपने समय से आगे की है। चितकोबरा के दो प्रमुख पात्र परंपरा को तोड़ते हुए जीते हैं, जिसके लिए उनके मन में किसी तरह का अपराधबोधक नहीं है। स्त्री न सिर्फ अपने प्रेमी के साथ शारीरिक संबंध बनाती है, अपितु शारीरिक संबंध बनाने के लिए एहसास को दूसरों के साथ 'शेयर' भी करती है। 1976–77 में लिखा गया चितकोबारा का कथानक आज कितना समसामयिक है, यह उपन्यास पढ़ने के बाद ही पता चल सकता है, लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि मृदुला जी ने चार दशक पहले जो आज समसामयिकी है, दिया। इस दृष्टिकोण से मृदुला जी को हिन्दी का जार्ज ऑरवेल कहा जा सकता है, जिन्होंने 1984 नाम उपन्यास तीन–चार दशक पहले ही लिखा था। मृदुलाजी अपनी अभिव्यक्ति में वो बेबाकी पायी है कि खरे को खरा और खोटे को खोटा कहती एक के बाद एक कृति रचती गयी। मध्यवर्गीय हिपोक्रेसी, बौद्धिक खोखलापना और भ्रष्ट जीवन जीने के तरीके की बखिया उधेड़ती मृदुलाजी शायद हिन्दी की पहली रचनाकार है, जिससे उनके समकालीन साहित्यकारों को अवश्य ही भय लगा होगा। मध्यवर्गीय जीवन शैली को जिस तरह मृदुलाजी ने बेपर्दा किया, वह हिन्दी में शायद ही देखने को मिले। शादीशुदा भी हों, अन्यत्र प्रेम भी खुलेआम कर रहे हों, दाम्पत्य में इसे ही तो व्यभिचार माना जाता रहा है, ऐसे मुद्दों पर केन्द्रित मृदुलाजी ने बखूबी अपनी कलम चलायी है। आज हमारे समाज में यही तो हो रहा है, परंतु मृदुलाजी की खासियत यह है कि उन्होंने चार दशक पहले यह सब लिखा है, आज तो समाज को आईना दिखाता हुआ उपन्यास है, चार दशक पहले लिखा उपन्यास चितकोबरा। मन मस्तिष्क देह की माँग और समरसता के प्रश्न को बड़े ही मार्मिक एवं तार्किक ढंग से उठाया गया है इस उपन्यास में तथा वाक्य संरचना की दृष्टि से भी चितकोबरा महत्वपूर्ण है; क्योंकि भाषा प्रवाहमयी और सरल है। 'मिलजुल मन' कथा और शिल्प दोनों ही दृष्टिकोण से सराहनीयी रचना है मृदुलाजी का। कुछ बातें जो मिलजुल मन का 'मस्ट रीड' उपन्यास बनता है, उसकी बानगी देखिये–''प्यार जबतक एकतरफा रहे, तभी तक लुत्फ देता।''''इश्क ऐसी बला है कि माकूल वक्त पर अलविदा न कहो और लुत्फ को जिंदगी बन जाने दो, तो लील जाता है समूचा।''गूल और मोगरा, दो बहनों की वार्तालाप बेहद दिलचस्प ढंग से कहानी को आगे बढ़ाती है। एक जगह मोगरा कहती है–''उस उम्र में जो पहले–पहल पहलू में आ बैठे, उसी से प्यार हो जाता है। जिस्म में एक अदद दिमाग रहे तो इंसान, पहले प्यार का रोमांच चखकर रफा–दफा कर देता है।'' मर्दाना–औरताना गाली पर बहस करती दोनों बहनों में गुल कहती है, औरताना मतलब?यह लफ्ज मैंने पहले कभी नहीं सुना। मोगरा कहती है, कैसे सुनी?फेमिनिज्म आया अब जाकर। मर्दाना तो औरताना भी होना पड़ेगा। मोगरा कहती है, एक राज की बात बताएँ?गुल का रंग साँवला था, बाकायदा। पर व अपने बेमिसाल नमकीन हुस्न को नजरअंदाज करके सारी उम्र गोरा बनने के सपने देखती रही और उसके लिए हर मुमकिन नामुमकिन कोशिश करती रही। कुछ कसुर वक्त का रहा, कुछ जमाने का और कुछ उसकी किस्मत का। पर उसमें नया क्या है, पुराना भी क्या है। आज भी फेसर एंड लवली क्रीम, उसी धड़ल्ले से पोती–पुतवाई जा रही है।'' 1972 से अपनी साहित्यिक सफर शुरू करनेवाली मृदुलाजी की पहली कहानी 'रुकावट' सारिका नामक पत्रिका में छपी, तत्पश्चात् 1975 में ही उनका पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' से ही वे चर्चा में आ गयी थी। इसके पश्चात् एक–एक कर प्रकाशित हाती उनकी छह अन्य उपन्यास आती गयी। साढ़े चार दशकों में फैला मृदुलाजी का साहित्यिक सफर में उन्होंने सात उपन्यास, ग्यारह कहानी संग्रह, दो निबंध संग्रह, दो व्यंग्य संग्रह, एक यात्रा वृतान्त और चार नाटकों की रचना की, जिसके लिए उन्हें व्यास सम्मान, साहित्य भूषण, साहित्यकार सम्मान, महाराज वीर सिंह सम्मान, स्पंदन कथा शिखर सम्मान, सेठ गोविंददास सम्मान तथा अब साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित किया गया।

आलेख

महिला स्वतंत्रता सेनानी के बलिदानों का आलोक

मंजु गुप्ता
सेक्टर 9 ए, वाशी,
नवी मुम्बई
मो.–9833960213

क्या हम आज असली मायनों में आजाद हो गये हैं?क्या हमारी मानसिकता में अंग्रेजियत की बू नहीं आती है। जब जेएनयू में 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' के नारे कन्हैया के संग न जाने कितने युवा लगाते हैं, तब ऐसे में भारत माँ की आजादी को खतरा देख के अंदर बैठे गद्दारों और देश की उन ताकतों से है, जो बारुद की ढेर पर बैठ के कब चिंगारी सुलगा दें। ये क्या जानेंगे देशभक्ति, देशप्रेम?ये क्या जानेंगे मानवता?

आजादी के मतवाले उन वीर महाराणा प्रताप, वीर कुँवर सिंह, भगत सिंह आदि को क्या कोई भुला पाया है। वे माँ, बहन, पत्नी थीं, जिन्होंने मुक्ति का ले के बीड़ा खुद अपने लालों के संग भरी जवानी में रजिया, पद्मिनी, रानी झाँसी बन दुश्मन के छक्के छुड़ाये थे। आज हम अपने राष्ट्र भारत में आजादी की साँसें इन्हीं वीरांगनाओं, शहीदों, देशभक्तों, गुमनाम देशभक्तों की बदौलत ले रहे हैं। हर काल, हर सदी में नारी जाति ने पुरुष के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर परिवार, समाज और राष्ट्र हित में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आजादी की लड़ाई में रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई आदि का नाम अग्रणीय है। 15 अगस्त, 1947 को हमें आजादी मिली थी। सारे भारतवासी भारतीय वीरांगनाओं, वीरों के अदम्य साहस से मिली राष्ट्रीय पर्व आजादी की 71वीं वर्षगाँठ मना रहे हैं। आज की पीढ़ी भी इन महान महिला विभूतियों को जानें।

रानी लक्ष्मीबाई की शौर्यगाथा :

भारत के सन् 1857 के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में पूरे देश के हर इलाके, हरवर्ग, राज–रानी, रंग–अमीर, हर जाति, हर धर्म के छोटी उम्र से लेकर बड़ी उम्र के व्यक्तियों ने योजनाबद्ध होकर अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई लड़ी थी। भारत की आजादी में नारियों ने भी पुरुषों के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में सशस्त्र विद्रोह कर ब्रितानियों के छक्के छुड़ा दिये थे।

आज हमारी गौरवमयी आजादी के प्रति हमारा दायित्व हो जाता है कि युवा पीढ़ी और आनेवाली नई पीढ़ी का ध्यान उन महान विभूति वीरांगनाओं के व्यक्तित्व, कृतित्व की ओर आकृष्ट कराया जाए, जिन्होंने अपने अनंत पराक्रम, अदम्य साहस, शौर्य, आत्मिक बल, देशप्रेम, देशभक्ति,मेहनत, लगन, दृढ़ निश्चय से ओतप्रोत हो, भारत की आजादी में अपनी कुर्बानियाँ देकर वे हमारी प्रेरणा पाथेय बनीं।

सन् 1857 के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी मंगल पांडे, नाना साहब, तात्यां टोपे, वीर कुँवर सिंह, धूधु पन्त, रानी लक्ष्मीबाई, रानी अवन्तीबाई, झलकारी बाई, दुर्गा भाभी और न जाने कितने गुमनाम नर–नारियाँ आदि शहीद हुए थे। मैं आजादी के महापर्व पर वीरांगना रानीलक्ष्मीबाई और झलकारी का संक्षिप्त बखान करूँगी।

महिला स्वतंत्रता सेनानी रानी लक्ष्मीबाई :

रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के क्रूर जुर्म, अत्याचारों, षडयंत्रों और शोषण के खिलाफ विद्रोह करनेवाली सबसे प्रभावी महिला थी। युद्धकला में निपुण रानी लक्ष्मीबाई ने स्वतंत्रता संग्राम की वीरता का इतिहास खुद अपनी तलवार को अंग्रेजों के खून में डूबोकर आजादी की नई इबारत लिखी थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिक अध्किारी भी उसकी तलवार का लोहा मानते थे। रानी लक्ष्मीबाई के अदम्य साहस को देख सुभद्रा कुमारी चौहान की पंक्तियाँ हैं–

चमक उठी सन सन्तावन में वह तुलवार पुरानी थी।
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।

रानी लक्ष्मीबाई का जन्म वाराणसी के 'भेदनी' में सन् 19 नवम्बर 1835 को माँ भागीरथी पिता मोरपंत तांबे के साधारण परिवार में हुआ था। मोरपंत पेशवा के सेवक थे। रानी लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम मनु था और सुंदर होने के कारण उसे छबीली भी कहते थे। जब मनु चार साल की हुई, तब उसकी माँ चल बसी। मनु का सही से लालन–पालन हो चिंतित पिता उसे अपने साथ बिठूर में पेशवा बाजीराव के दरबार में ले आए, जहाँ मनु बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ बरछी–भाले, कृपाण, अस्त्र–शस्त्र चलाने, घुड़सवारी करना आदि की शिक्षा ले नकली युद्ध करना, व्यूह रचना का खेल खेलती थी। इस कारण उसके चरित्र–व्यक्तित्व में वीर पुरुषोचित गुणों का विकास हो गया, जिससे वे आगे चलकर अंग्रेजों से वीरतापूर्वक युद्ध करके साहसपूर्ण गतिविधियों सें स्वतंत्रता संग्राम की मर्दानी कहलाई।

धीरे–धीरे बचपन यौवन में बदला और मनु की शादी झाँसी के राजा गंगाधर राव के साथ हो गयी, इसलिए मनु रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। विवाह के नौ साल बाद पुत्र को जन्म दिया। खुशियों का कुलदीपक तीन माह के बाद बुझ गया। पुत्र वियोग में राजा का स्वास्थ्य गिरने लगा, तब उन्होंने वारिस के रूप में दामोदर राव को गोद लिया। राज गंगाधर राव बीमारी को साथ लिये स्वर्ग सिधार गये।

डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति ने दामोदर राव को झाँसी का वारिस नहीं माना और राजा का सारा खजाना अपने कब्जे में कर लिया। यह देखकर दुखी रानी लक्ष्मीबाई अश्रुपूर्ण हो कहने लगी–'मैं झाँसी नहीं दूँगी।'

रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के सम्मुख आत्मसमर्पण न करके बल्कि झाँसी के लोगों का समर्थन ले झाँसी की सुरक्षा की तैयारियों में जुट गई और एक स्वयं सेवक सेना का गठन कर महिलाओं को भर्ती कर युद्ध प्रशिक्षण देने लगी। झलकारी रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल होने के कारण उसे सेनानायक बनाया। सर ह्यूरोज के नेतृत्व में 1858 में मार्च माह में विशाल ब्रितानी सेना ने झाँसी को घेर लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने पंद्रह दिनों तक डटकर लड़ाई की। लेकिन ब्रितानी सेना ने झाँसी पर अपना कब्जा कर लिया और रानी दामोदर राव को संग लिये कालपी पहुँची।

वहाँ तात्या टोपे से मिलकर संयुक्त सेना की मदद से अंग्रेजों के छक्के छुड़ाकर ग्वालियर पर अपना अधिकार जमा लिया। 17 जून 1858 को कोटा में अंग्रेजों की विशाल सेना ने रानी के साथ घमासान युद्ध किया। घुड़सवार पर रानी वहाँ से भागी, पर एक नाला आ जाने से उसका घोड़ा वहाँ अड़ गया, तभी सेना की गोली से रानी ने अपनी अंतिम साँसें लीं। वही पास की कुटिया से साधु ने झाँसी की रानी की लाशा में आग लगाकर अंतिम संस्कार किया।

वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई वीर सैनिक की तरह अमर हो गयी और केवल मात्र तेईस साल की उम्र में अपने त्याग, देशभक्ति, शौर्य से स्वतंत्रता

की ज्वाला को आलोकित कर गई।

महिला स्वतंत्रता सेनानी झलकारीबाई :

स्वरचित पंक्तियाँ इन वीरांगनाओं के लिए समर्पित है–

कुर्बानियों के खून ने सींची आजादी की दौलत
घर बैठे हम ले रहे चैन की साँसें इनकी बदौलत।–मंजु गुप्ता

इतिहास के पृष्ठों में साहसी झलकारीबाई का नाम स्वर्णाक्षकरों से अंकित है। झलकारी बाई का जन्म झाँसी में हुआ था। इकलौती संतान होने के कारण पिता ने लड़कों की तरह पाला पोसा। उसे घुड़सवारी और अस्त्र–शस्त्र की विद्या में पारंगत करा के कुशल योद्धा बनाया। उसके साहस की अविस्मरणीय मिसालों का इतिहास साक्षी है। एक बार जंगल से लकड़ियों का गट्ठर लिये घर आ रही थी, रास्ते में खूँखार तेंदुए ने उसपर आक्रमण कर दिया। तभी उसने अपनी दुधारी कुल्हाड़ी की धार से उसके टुकड़े कर दिये।

एक और किंवदंती के अनुसार डाकुओं ने एक व्यवसायी को लूटा। वहीं पर झलकारीबाई ने अपनी सूझ–बूझ, ताकत के दम पर डाकुओं के छक्के छुड़ा दिये। पिता–गाँववालों ने उसकी बहादुरी को देख रानी लक्ष्मीबाई ने सैनिक पूरनकोरी से उसकी शादी करा दी। रानी लक्ष्मीबाई अपनी हमशक्ल को देख दंग रह गई। उसे अपनी सेना में शामिल कर बंदूक, तोप, तलवार का प्रशिक्षण दे सेना नायक बनाया। जो रानी लक्ष्मीबाई के वेश में करती थी। शत्रु धोखा खा जाते थे। उसे रानी लक्ष्मीबाई समझ युद्ध करते थे। अंतिम समय में झाँसी की रानी के साथ झलकारी सर ह्यूरोज के नेतृत्व में अंग्रेजों से युद्ध कर रही थी। झलकारी को रानी लक्ष्मीबाई समझकर पकड़ लिया, तभी रानी लक्ष्मीबाई को किले से बाहर भागने का मौका मिल गया। रानी की वफादार झलकारी को अंग्रेजों ने मार दिय। वह अंग्रेजों के खिलाफ जीवन पर्यन्त स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई के संग लड़कर अपने प्राणों को उत्सर्ग किया।

झलकारी बाई की वीरता–साहस की गाथा का लोक कथा, लोकगीतों में गुणगान आज भी होता है। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा–

जाकर रण में ललकारी थी, वह तो झाँसी की झलकारी थी।
गोरों से लड़ना सीखा गई, है इतिहास में झलक रही।
वह भारत की ही नारी थी।

हमें इनके त्याग, बलिदानों से मिली आजादी को सहेजकर रखना है। अंत में स्वरचित महिला स्वतंत्रता सेनानी के लिए समर्पित दोहे–

आजादी के लिये ये थामें प्राण मसाल।
कर गई देश आलोकित भारत माँ के लाल।।

समीक्षा

गिरती दीवारें (कथासंग्रह)

डॉ0 पंकज कर्ण
जे.एम. कॉलेज मुजफ्फरपुर

कहानी लेखन साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक है। आज विपुल मात्रा में कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं, जिसमें समय, समाज, संस्कृति को प्रमुखता से स्थान दिया जा रहा है। आज बदलते समय के साथ मूल्य और साहित्य दोनों अवमूल्यन के दोर से गुजर रहा है। ऐसे में मूल्य, मनुष्यता और संवेदना को बचाने की हठ करता नरेन्द्र किशोर सिन्हा का कथा संग्रह 'गिरती दीवारें' अपने शीर्षक को चरितार्थ करता दीख रहा है, जहाँ लेखक ने अपने अंतर मन के भाव को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त किया है। इसका शीर्षक ही सांकेतिक है, जिसमें लेखक ने अपने अनुभव को शब्दों का रूप देकर कलात्मक स्वर दिया है। अपने पेशे के इतर इन्होंने जिस तरह के भावों को अपनी लेखनी से उकेरा है, वह काबिलेतारीफ है।

हमारा वर्तमान परिवेश भूमंडलीकरण के हाथ में कठपुतली की तरह नाच रहा है–ऐसे में लोकचिंतन, संस्कार और परिवार में बिखराव की स्थिति आ गई है, ऐसे में आज की पीढ़ी अपनी सभ्यता, संस्कृति से कोसों दूर होता जा रहा है, विसंगतियों एवं विद्रूपताएँ संबंधों पर हावी हो रहा है और ऐसा खासकर समाज के मध्यमवर्गीय परिवार में आये दिन हो रहा है। इस मध्यम वर्गीय परिवार को नरेन्द्र किशोर जी ने भोगा भी है, जिया भी है और अपने जीवनानुभव को सहजता, सरलता और बड़ी भावुकता से अपनी कथा में अभिव्यक्त किया है। कथाकार ने खुद स्वीकार भी किया है कि जीवन–जगत के वैविध्यपूर्ण उदात्त आसंगों–प्रसंगों, आस्वादों, अनुभवों, आवेगों–उद्वेगों को अभिव्यक्ति देने की अकुलाहट ही उनकी कहानियों की आधारशिला है। युगीन– व्यवस्था, जीवंत–ज्वलंत प्रासंगिक घटनाओं एवं समस्याओं से जुड़कर उन्होंने कथा–कहानी का सृजन किया है, गर्भ से निकली चिंगारी को प्रज्वलित किया है।

एक सर्जक की रचना उसके परिवेश से जुड़ी होती है, वहाँ की स्थिति–परिस्थिति को बड़ी मुखरता के साथ चित्रित करता है। कथाकार नरेन्द्रजी ने अपने जीवन यापन के दौरान भले ही छोटे–बड़े शहरों में अपनी जिंदगी के अमूल्य क्षण बितायें हैं, परन्तु उनकी कथाओं में उनका गाँव भी बोलता है। शहर में रहकर ग्रामीण जीवन की सच्चाई को पकड़ पाना थोड़ा मुश्किल होता है, ऐसी स्थिति में गाँव की विविधता एवं यथार्थ को कथाकार ने पूरी ईमानदारी से लिखा है। संग्रह की पहली कहानी 'परिक्रमा' में इस यथार्थ का दर्शन है। कुल भूषण और प्रिया जैसे पात्रों के बीच बेवस और लाचार माँ 'लक्ष्मी' के दर्द बेवसी और अंतर्मन की छटपटाहट को भावनात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें गाँव की संवेदना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। आज परिवार में हो रहे बुजुर्ग माता–पिता की उपेक्षा और स्त्री की लाचारी भी कहानी में दिखाई पड़ती है। वर्तमान से होड़ लेती, जाति विसंगतियों पर चोट करती संग्रह को कहानी 'साँझ और सबेरा' के पात्र बेहतर जिंदगी के लिए प्रतिबद्ध भी है और द्वंद्वमुक्त भी है। इसका नायक बेहतर जिंदगी का समाधान ढूँढ़ता नजर आ रहा है। संग्रह की अन्य कहानियाँ 'रोशनी की तलाश', 'मुट्ठी भर यादें', 'सफर जिंदगी का', 'लालिमा', 'अतीत की लकीरें' आदि में रचनाकार ने ग्राम्य जीवन को देखने समझने की सूझ–बूझ के साथ पहले और अब के गाँव के परिवेश को और ग्राम्य जीवन के यथार्थ को संपूर्णता के साथ उपस्थित किया है, जहाँ कथाकार आम जन जीवन से जुड़कर अपनी भोगी हुई स्थितियों–परिस्थितियों को सजीवता एवं जीवंतता प्रदान किया है। कथाकार ने इन कथाओं के माध्यम से जीवन के हर क्षेत्र पर न सिर्फ अपनी पैनी नजर रखा है, बल्कि तमाम समस्या एवं उसके समाधान का यथार्थवादी चित्रण भी किया है। संग्रह की अन्य कहानियाँ 'शून्य से शून्य तक', 'सिसकियाँ', 'अवसान', 'इन्द्रधनुष', 'युगेश्वर : मेरे पिता', 'चाँदनी में', 'बर्फ पिघलने लगी', 'गन्तव्य' और 'सच्चा ज्ञानी' कहानी कला की विविधाओं को समेटे हुए है। इन कहानियों में जहाँ आम जन का जीवन मुखर है, वहीं उनके सपनों को भी स्वर देते हैं। आमजन की आकांक्षाओं से सीधा संवाद करते हुए उनके संघर्षों को भी इन कहानियों में देखा जा सकता है। 'युगेश्वर : मेरे पिता' सरीखे आत्मकथात्मक कहानी में जहाँ भावनाओं का उछाह है, वहीं 'इन्द्रधनुष' में सामयिक समर्पण का भाव भी है। कहते हैं साहित्य का दीप समय की तेज आँधियों के बीच भी निर्बाध जलता रहता है। नरेन्द्र किशोर सिन्हा ने 'गिरती दिवारें' के साथ हिन्दी साहित्य जगत में एक और कभी न बुझनेवाला दीप जलाया है, जिसका प्रकाश पाठक के अंतर्मन को आलोकित करता रहेगा। कुल सत्रह कहानियों का यह संग्रह वक्त की दहलीज पर रखा गया गाँव, समय और समाज के बदलाव का संपूर्ण दस्तावेज है, जिसका पाठकीय समर्थन होना ही चाहिए।

लघुशोध

सूफी कवि : साझी संस्कृति का परिचायक

डॉ. वसीम राजा
शोधार्थी
स्ना. हिन्दी विभाग, ति.मां. भा. वि.
(भागलपुर) मो : 8409908332

अंदाज गर हो जाए जहाँ का सुफियाना।
खिलेगा, महकेगा हर गोसए आसियाना।।

भारत में सांस्कृतिक एकता स्थापित करनेवाले ऐतिहासिक कारकों में मध्यकालीन सूफी हिन्दी काव्य का बहुत बड़ा योगदान है। सूफी मत की उत्पत्ति ही धार्मिक कठोरता और भेदभाव वाली दृष्टि के विरुद्ध हुई। मानवीय प्रेम, करुणा, आचरण की सादगी सूफी संतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर जितने भी मत प्रकट किये गये हैं, उनमें आपस में भिन्नता के बावजूद एक बात लगभग समान रूप से ध्वनित होती है और वह है आचरण की पवित्रता और सामग्री। हालाँकि कुछ विद्वानों ने 'सूफी' शब्द को मदीना में 'सुफफा' नाम चबूतरे पर बैठनेवाले फकीरों से जोड़ा है, पर यह बड़ा स्थूल अर्थ लगता है। कुछ लोगों का मत है कि 'सूफी' शब्द 'सफ' यानी पंक्ति से बना है। इस पंक्ति का संबंध उन लोगों से है, जो अल्लाह के द्वारा कर्मों के निर्णयवाले दिन अपनी शुद्धता एवं सद्विचार के कारण अलग पंक्ति में खड़े किये जायेंगे। अनेक लोगों का मानना है कि सफेद ऊन के वस्त्र पहनने वाले सूफी कहलाए तो अत्यन्त साधारण होते थे। अंग्रेज चिंतकों के अनुसार सूफी शब्द ग्रीक के 'सोफोस' से बना है, जिसका अर्थ ज्ञानी पुरुष है। इस प्रकार उपर्युक्त मतों से यह बात सामान्य रूप से सामने आती है कि 'सूफी' संतों के लिए पवित्रता, आध्यात्मिकता एवं भौतिक सुखों का त्याग महत्वपूर्ण था।

'सूफी' संप्रदाय की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करने से यह तथ्य सामने आता है कि इस्लाम से संबंध के बावजूद इसका रिश्ता अरबों की प्राचीन चिंतन–मनन की परंपरा से था, जिसे दौरे जाहिली कहा जाता है। इस परंपरा के विकास में दूसरे समाजों से संपर्क का प्रभाव भी था, खासतौर से हिन्दुस्तानी समाज से। डॉ. आबिद हुसैन द्वारा अनूदित किताब 'इस्लामी दर्शन का इतिहास' में कहा गया है–

''ज्ञान और विज्ञान का वास्तविक मिलन हिन्दुस्तान समझा जाता था। अरब के लेखकों के यहाँ प्रचुरता से यह विचार मिलता है कि दर्शन हिन्दुस्तान में ही उत्पन्न हुआ है। पहले शांतिपूर्ण व्यापारिक गतिविधियों के निमित्त जो हिन्दुस्तान और यूरोप के माध्यम से हुआ करती थी, अनंतर इस्लामी विजयों के माध्यम से अरबों की अभिज्ञता भारतीय मनीषा के संदर्भ में भी बढ़ती गई....हिन्दुओं की नीतिपरक एवं राजनीतिक सूक्तियाँ और किस्सा कहानियों में से बहुत कुछ लिया गया। उदाहरण के लिए पंचतंत्र जिसका अनुवाद इब्नुल मुकफफा ने मंसूर के काल में किया। किन्तु इस्लाम में सांसारिक विज्ञानों के आरंभ सर्वाधिक प्रभाव हिन्दुओं के ही गणित एवं ज्योतिष (रोगों के निदान तथा तंत्र–मंत्र के संबंध में) का पड़ा। ब्रह्म गुप्त के सिद्धांत से पूर्व जिसका अनुवाद मंसूर के काल में फराजी ने भारतीय विद्वानों की सहायता से किया था। अरब बतलीमूस की अलमिजिस्ती से अभिज्ञ थे। उसके माध्यम से अतीत और भविष्य का एक विस्तृत जगत दृष्टिगोचर हुआ। जिन भवरू संख्याओं से भारतीय विद्वान कार्य लेते थे, उन्होंने गंभीर मुस्लिम इतिहासकारों को विस्मय में डाल दिया।

हिन्दुओं के तार्किक एवं पराभौतिक विचारों से भी मुसलमान अनभिज्ञ नहीं रहे, किन्तु गणित और ज्योतिष की अपेक्षा इन चीजों का प्रभाव अरबी विज्ञानों के विकास पर बहुत कम पड़ा। 1

इस्लाम पूर्व अरबों के काव्य में जनजातीय जीवन का प्रतिबिम्ब था। शौर्य, सदाशयता, अतिथि सत्कार, गर्व एवं अहंकार, द्वेष एवं प्रतिकार, क्षमा एवं पुरस्कार, भ्रातृभाव एवं सहानुभूति आदि काव्य के मुख्य विषय थे। अरबों के यहाँ साल के खास महीनों में मेले, बाजार उपादि लगाए जाते थे, जिसमें त्योहारों जैसी चहल–पहल होती थी। केवल खरीद–बिक्री नहीं होती थी, बल्कि काव्यपाठ और अपने–अपने कबीलों की शौर्यगाथा भी लोग सुनाते थे। इस्लाम का उदय हुआ तो कवियों को पथभ्रष्ट एवं अवारागर्द कहा गया। हालाँकि डॉ. अब्दुल अलीम का मत है कि कुरान में जो कवियों को आवारागर्द कहा गया है, उसका मकसद काव्यतत्व की भर्त्सना नहीं है, बल्कि इस्लाम पूर्व काव्य में जो ऐयाशी, अश्लीलता, जुएबाजी आदि को बढ़ावा देनेवाली बातें थीं, उनका विरोध करना था। यह ध्यातव्य है कि इस्लाम का उदय पतनशील अरबी समाज में श्रेष्ठ आचार–विचार की प्रतिष्ठा के लिए था और इस प्रकार वह सामाजिक सांस्कृतिक सुधार का भी आंदोलन था। इसीलिए हजरत मुहम्मद स0 को काव्य विरोधी कहना उचित नहीं है, बल्कि ऐसे काव्य का विरोधी कहना चाहिए, जो लोगों की रुचियों, वृत्तियों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। हजरत प्रभाव डालता है। हजरत मुहम्मद स0 ने मुसलमानों को संन्यासी बनने की शिक्षा नहीं दी, बल्कि सदाचारी और विद्वान बनने पर जोर दिया। उन्होंने जीवन की वास्तविक साधना पर जोर दिया। सूफी मत तात्विक रूप से इन बातों को स्वीकार करता है। इस्लाम से इसकी भिन्नता शरीयत को लेकर है। इस्लाम में जो कर्मकांड था, उसके विरोध में सफी मत के लोग और इस्लाम के अतिरिक्त अन्य मतों के प्रभाव भी इसपर हैं। डॉ. कृष्णनारायण मागध कथन इस प्रसंग में उल्लेखनीय है–

''सूफी मत इस्लाम की शरीयत की प्रतिक्रिया है। इसमें इस्लाम की गुह्य विद्या भारतीय अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत, नव अफलातूनी मत और विचार स्वातंत्र्य है। कुछ लोगों के अनुसार सुफी मत का आदम में बीजवपन, नूह में अकुरण, इब्राहीम में कली–विकास, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक और मुहम्मद में फलागम हुआ है। इसमें ऐतिहासिक विकास की दृष्टि है। इस मत ने भारत में यूनानियों के व्यापारिक संबंध के साथ ही प्रवेश किया लगभग बारहवीं शती में यह मत भारत में फैल चुका था। आईने अकबरी में इसके चौदह पंथों का उल्लेख हुआ है, जिनमें कादरी, सुहरावर्दी, नक्शबंदी और चिश्ती पंथ अधिक प्रसिद्ध हैं। चिश्ती संप्रदाय के सातवीं पीढ़ी में ख्वाजा मोइनुद्दीन हुए हैं। इन्होंने ही भारत में सूफी मत का प्रचार किया।''2

हालाँकि भारत में सूफियों का आगमन 632 ई. के पहले ही शुरू हो चुका था, पर उनके ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। अबूतमीम अंसारी के विषय में बतलाया जाता है कि वे इस्लामी पैगम्बर के स्वर्गवास के बाद भारत आ गये थे। चेन्नई के पचास किमी. की दूरी पर कोलम (तमीमनगर) में समुद्र तट पर उनका मजार आज भी मौजूद है और श्रद्धालुओं का केन्द्र है। एक अन्य शेख अब्दुल्लाह बिन अनवर जो भक्तों के दादा हयात कलंदर के नाम से आज जाने जाते हैं, उनका मजार कर्नाटक के चिकमंगलोर में है, जो विभिन्न धर्म के लोगों के लिए समान रूप से आस्था का केन्द्र है। पर इनके बारे में ऐतिहासिक

प्रमाणों का अभाव है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो महमुद गजनबी के मुलतान विजय (1009 ई.) से आरंभ होता है और इल्तुतमिश के समय सूफियों के पाँव भारत में जम गये थे। इल्तुतमिश सूफियों की बहुत इज्जत करता था, वही नहीं कठोर सुलतान के रूप में प्रसिद्ध बलवन भी सूफियों का भक्त था। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह तुगलक भी सूफियों के आगे हाथ बाँधे खड़ा रहता था। इस प्रकार सुलतान महमुद के समय से ही भारत में सूफियों का आना प्रारंभ हो गया था। जुनैजिया संप्रदाय से सूफी शेख अबुल फजल, मुहम्मद बिन हारून खत्तली ने अपने शिष्य शेख हुसैन जनजानी को लाहौर में धर्मसेवा हेतु नियुक्त किया गया। शेख जनजानी की सहायता के लिए सैयद अबुल हसन अलीबिन उस्मान हजकेरी को नियुक्त किया। हजवेरी की एक ही किताब महफूज है–'कश्फ अल महजूब'। यह पुस्तक इतनी प्रसिद्ध है कि इसको सूफी मत में संविधान का दर्जा प्राप्त है। आईने अकबरी में यह उल्लेख है कि ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती लाहौर में उनके साथ ठहरे थे तथा उनके बारे में निम्नांकित पंक्तियाँ कही थीं–

गंजे बख्को फैजे अलम, मजहरे नूरे खुदा।
नाकिसों रा पीरे–कामिल, कामिलाँ रा रहनुमा।।3

(समस्त जगत को अध्यात्म कोष प्रदान करते हैं तथा ईश्वर का प्रकाश प्रकट करते हैं। उपज्ञानियों के लिए मार्ग सिद्ध महापुरुष तथा ज्ञानियों के गुरु हैं।)

ख्वाजा माईनुद्दीन चिश्ती का भारत में सूफी संप्रदाय के विकास में बहुत महत्व है। इनका जन्म 1142 ई0 में सजिस्तान में तथा पालन–पोषण खुरासान में हुआ था। इन्होंने सूफियों के विभिन्न संप्रदायों के विद्वानों का सत्संग किया। इनके शिष्य शेख हमीउद्दीन नागौरी थे। वे त्यागी थे और मांसाहार का निषेध करते थे। उन्होंने सूफी मत के नौ सिद्धांतों को लिपिबद्ध किया था। इन नौ सिद्धांतों के बारे में जाफर रजा का कथन है–

''उपर्युक्त नौ सिद्धांत किसी भी व्यक्ति के जीवन के मार्ग निर्देशक सिद्धांत हो सकते हैं, चाहे वह मुसलमान हो या किसी अन्य धर्म का अनुयायी हो अथवा नास्तिक हो, किसी धर्म को मानता हो। ख्वाजा के आध्यात्मिक चिंतन की धुरी इश्क है, जिसमें दो पक्ष हैं–माशूक एवं आशिक। प्रेम अपनी व्यापकता एवं विशालता में अपार समुद्र के समान है। माशूक अपने सौंदर्य एवं आभा में सूर्य के समान है तथा आशिक अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता में धरती के समान है। ईश्वर की उच्च आराधना भूखों को भी तृप्त कर देती है।''4

इनके बाद ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की चर्चा होती है। एक कव्वाल ने इन्हें मशहूर सूफी शायर शेख अहमद जाम का यह शेर सुनाया।
कुश्तगाने खंजरे तसलीम रा, हर जमा अज गै जाने दीगरस्त।''5

इससे वे इतने विभोर हो गये कि जबतक जीवित रहे, इन्हीं दो पंक्तियों को सुनते रहे। इसके बाद बाबा फरीद हुए, जिनके पाँच सौ दोहों को अमीर खुर्द ने संपादित किया, जिनमें से कुछ दोहों को सिक्खों के पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में लिया गया है। इन्हीं की परंपरा में चौदहवीं शताब्दी के अत्यन्त महत्वपूर्ण सूफी संत ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया हुए। ये किसी धर्म के साथ कोई भेदभाव नहीं करते थे। इन्हीं की परंपरा में एक और प्रसिद्ध सुफी शेख नसीरुद्दीन महमूद चिराग देहलवी हुए। मुहम्मद इस प्रसंग में बतलाते हैं–

''शेख निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु 18 रबी दोयम 725 हिजरी को हुई। उनके जनाजे की नमाज मुलतान के प्रसिद्ध सुहरावर्दी संत शेख वदउद्दीन जकरिया के पौत्र शेख रुकनुद्दीन ने पढ़ाई, जो तब दिल्ली में मौजूद थे। मरने के तीन एक माह पहले अमीर खुसरो और दूसरे लोगों के इसरार पर उन्होंने अपना उत्तराधिकार पत्र (खिलाफतनामा) तैयार कराया था। इस पत्र को पानेवाले पहले सूफी कुतुबुद्दीन मुनव्वर थे। वे अयोध्या के शेख फरीदुद्दीन के वरिष्ठ हांसीवासी शिराय शेख जमाल के पाते थे। शेख नसीरुद्दीन दूसरे स्थान पर रहे। लेकिन शेख औलिया ने स्पष्ट कर दिया कि इस बारे में वरिष्ठता की कोई प्रासंगिकता नहीं थी। उन्होंने दोनों को हुक्म दिया कि आपस में गले मिलें।''6

इस प्रकार सूफी संतों की एक सुदीर्घ परंपरा दिखलाई पड़ती है, जो प्रेम और रहस्यवादी प्रवृत्ति के माध्यम से इस्लाम को लचीला और भाव परक बनाने का प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार इस्लाम और तसव्वुफ के बीच एक सामंजस्य दिखलाई पड़ता है। इनमें से कई सूफियों को उत्कृष्ट काव्यों की रचना की। इन्हीं में से एक अलगजालि थे, जिनका जन्म 1059 ई. में हुआ था। 1118 में इब्न अल फारिज का जन्म काहिरा में हुआ था, उसके 'गजल संग्रह' में भावपक्ष और कलापक्ष का बेहतरीन समन्वय है। 1207 में प्रसिद्ध सूफी कवि रुमी हुए। इन्होंने अपनी मसनवियों में इस्लाम के आध्यात्मिक विचारों का सम्यक् विवेचन किया और 'तू' तथा 'मैं' का अभेद स्थापित किया। रुमी की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद हो चुका है। इनकी अंतिम रचना 'मसनद–ए–मानवीं' का कुछ वर्ष पहले मुंबई के युवा संस्कृतिकर्मी अभय ने बढ़िया अनुवाद किया है। इसके बारे में शशिभूषण द्विवेदी कहते हैं–

''यह किताब एक तरह से नैतिक कथाओं और आध्यात्मिक शिक्षाओं के सार संग्रह जैसी है, जिसे खुद रुमी ने धर्म के मूल का मूल और 'कुरान–ए–पाक' की टीका कहा था। ....रूमी के साहित्यिक पद और प्रभाव का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है, सार्वकालिक महान शायर मिर्जा असद्उल्ला खांगालिब तक ने अपनी शायरी पर रूमी के प्रभाव को स्वीकार किया है।''7

ध्यातव्य है कि यह रुमी की अंतिम रचना है, जो जीवन के अंतिम दौर में लिखी गई है। इसके पूर्व रुमी ने जो ग़ज़लें लिखीं, उनमें प्रेम का वह चरम रूप मिलता है, जब 'तू' और 'मैं' का भेद मिट जाता है। एक बानगी प्रस्तुत है–

''परदा बरदारो विरहना जो कि मन।
मीन खुस्यम वासनम बा पैरहन।''8

निश्चय ही सूफी काव्य का प्राण प्रेम है, जो हिन्दी सूफी काव्य के पहले से प्रतिष्ठित प्रेम का वर्णन किया है। इसके लिए उन्होंने मसनवी शैली अपनाई। इनकी रचनाओं का आधार लोक कथाएँ ही थीं, जिनपर आध्यात्मिकता का रंग चढ़ता गया। मसनवी शैली में लिखी गई काव्य पुस्तकें सर्गबद्ध हैं, उनमें सबसे पहले परमात्मा का गुणगान करके काव्यसृजन की सफलता की कामना की जाती है और पुनः किसी महान व्यक्ति की प्रशंसा की जाती है। ये काव्य विभिन्न खंडों में विभक्त हैं और प्रत्येक खंड का शीर्षक किसी व्यक्ति स्थान या घटना विशेष पर आधारित है। प्रेम कथाओं के लघु काव्य के लिए 'ग़ज़ल' शब्द का प्रयोग हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. इस्लामी दर्शन का इतिहास, आबिद हुसैन द्वारा अनूदित, पृ.18
2. हिन्दी साहित्य : युग और धारा, डॉ. कृष्णनारायण मागध, पृ.113
3. इस्लामी अध्यात्म सूफीवाद, जाफर रजा, पृ. 107
4. वही, पृ. 112
5. वही, पृ. 115
6. मध्यकालीन भारत, संपादक इरफान हबीब, पृ. 15
7. नया ज्ञानोदय, सं. रवीन्द्र कालिया, पृ.92, दिसम्बर 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
8. पद्मावत का काव्य वैभव, डॉ. मनमोहन गौतम, पृ. 99

लघुशोध

रहीम एक सांस्कृतिक धरोहर

डॉ. अब्दुस सलाम
शोधार्थी
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ति.मां. भा. वि., भागलपुर
मो. 9931009213

हमारे यहाँ एक–से–एक बड़े महान कवि हुए हैं, किसी ने अपने बारे में कुछ कहा है?कहा भी गया है–'साधु की जात न पूछो।' कबीर दास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, तुलसीदास की अपनी लिखी कोई आत्मकथा उपलब्ध है?यह दीगर बात है कि पश्चिम के सभी महान कवि, रचनाकारों की स्वयं की सृजित आत्मकथा उपलब्ध है।उनकी छोटी–सी–छोटी बातें, घटनाएँ और पत्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। कवि रहीम की भी स्वयं की सृजित आत्मकथा उपलब्ध नहीं है। ऐसे में उनकी रचनाओं में छिट–पुट आये हुए संकेत तथा बाह्यजगत में प्रचलित किंवदंतियों एवं जनश्रुतियों के माध्यम से उनके विषय में जानकारी एकत्रित पाते हैं। हमारे यहाँ ऐसे कवियों का जीवन–परिचय पाने का यही आधार रहा है। डायरी लेखन पश्चिम की विधा रही है। बहुत मुमकिन है कि कवि रहीम का जीवन परिचय संक्षेप में ऐसा ही रहा होगा–

''मैं अपनी पीठ पर अपनी ही कब्र के
पत्थर सा ढोता संसार।''1

जीवन उस झरने के समान है, जो अपने लक्ष्य तक पहुँचने की लगन लिए पथ की बाधाओं से मुठभेड़ करता ही जाता है। गति ही जीवन है और स्थिरता मृत्यु। अतः मनुष्य को भी निर्झर के समान निरंतर गतिमान रहना चाहिए।किसी कवि का जीवन परिचय पाने से पहले हमें जीवन को समझ लेना बेहतर होगा–

''यह जीवन क्या है?निर्झर है, निर्झर कहता है–बढ़े चलो
तुम पीछे मत देखो मुड़कर, यौवन कहता है–बढ़े चलो
सोचो मत होगा क्या चलकर, चलना ही केवल चलना है
जीवन चलता ही रहता है, मर जाना ही रुक जाना है
निर्झर यह झरकर कहता है।''2

कवि रहीम का जीवन 'चिराग और तूफान' का रहा है, ऐसे में उनकी रचना एक यातना है। अनुभवों के गलियारे से गुजरते हुए उनका कंधा दुखने लगा है–

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि इठिलहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।(रहीम)

दूब के सलिब पर रात्रि का शबनम की बूँद टँगी हुई झुलती रहती है, ऐ क्षणिक मन में आशा की ज्योति जलाये हुए कि भोर की पहली किरण में इस वसुंधरा पर अपनी इन्द्रधनुषी छवि की झलक की पहली किरण में इस वसुंधरा पर अपनी इन्द्रधनुषी छवि की झलक दिखलाएगी, वह पत्थर–सी जिंदगी को फूल की तरह ढोती है। कई सदियाँ बीत गईं। भारत के इतिहास में एक त्यागमूर्ति बालक का अवतार हुआ था संसार में। वह योग्य पिता का सुयोग्य पुत्ररत्न था, उसके जीवन संग्राम के किस्से आज भी लोग बड़ी दिलचस्पी से सुनाया करते हैं। ऐसे बिरले होते हैं, फरिस्ते होते हैं और उनकी रचनाओं में जीवन के अगणित दौलत छिपे हैं।

रहीम का जीवन संघर्ष : दिल्ली को केन्द्र बनाकर कई वंशों के बादशाहों ने भारत पर राज्य किया है। राजसिंहासन पर बैठकर हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाह, मुसलमान बनने से अधिक बादशाह बनने की भावना रखते थे और अपने राज्य की स्थापना और सुदृढ़ता के लिए केवल हिन्दुओं को ही नहीं, मुसलमानों से भी लड़ते थे। मुसलमान बादशाह दुनिया के दूसरे बादशाहों की तरह आन–बान से राज करने को अपना परम कर्तव्य समझते थे। वे जिस साम्राज्यवादी श्रेणी और राजसी परंपरा से संबंध रखते थे, उसमें किसी रुकावट के बिना राज करना उनका ध्येय था। धार्मिक बाधाओं को तोड़ने में उन्हें बस उतना ही समय लगता था, जितना सामाजिक या दूसरी बाधाओं को तोड़ने में। यह मुसलमान बादशाह यहीं के हो गयेथे। यहीं की मिट्टी में जन्म लेकर, यहीं की धरती पर सोकर यहाँ के लोगों से घुलमिल जाना चाहते थे। उन्होंने यहाँ की बहुत–सी रश्मों और रीति–रिवाजों को अपना लिया था और भारतीय जीवन में आनंद प्राप्त करने लगे थे। गजनवियों से लेकर मुगलों के अंतिम दिनों तक यही होता रहा। जिसने भारतवर्ष का इतिहास पढ़ा है, वह इसे भलीभाँति जानता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक विचार अलग–अलग थे।3

मुसलमान बादशाहों में सबसे पहले अलाउद्दीन खिलजी की सेनाएँ दक्षिण भारत पहुँची थी और दिल्ली के केन्द्रीय राज का क्षेत्र नीचे दूर तक फैल गया। उत्तर भारत में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा था, उसी के राज्यकाल में नादिरशाह ने जबरदस्त आक्रमण किया था, दिल्ली को लुटा था।

नादिरशाह ने दिल्ली लुटने के क्रम में दिल्ली स्थित परीक्षितपुर में संत कवि चरणदास की शिष्या संत कवयित्री सहजोबाई का मठ भी लूटा था, जला दिया था।

हमारे हिन्दी साहित्य में कवि चन्दवरदाई और कवि रहीम दोनों कवियों की कलम और तलवार पर समान अधिकार थे। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में कवि रहीम को प्रायः हिन्दी कवि के रूप में जानते हैं। प्रो. एहतेशाम हुसैन ने 'उर्दू–साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में रहीम को उर्दू कवि के रूप में उल्लेख नहीं किया है। रहीम का जीवन अनेक तरह के संघर्षों से ओतप्रोत है। उनका वालिद बैरम खाँ तुर्क जाति के सेफअली का बेटा था। उनकी अम्मीजान सुलताना बेगम थी। बैरम को अपने साठा बसंत में सुलताना बेगम से यह संतान (रहीम) प्राप्त हुई थी। सुलताना बेगम रहीम के इंतकाल के वक्त एक मुग्धा युवती थी और रहीम ही उनकी एकमात्र संतान थी। रहीम के पालन–पोषण के समय सम्राट अकबर के साथ उनका परिचय घनिष्ठ होता गया और चलकर सम्राट अकबर ने सुलताना बेगम से निकाह कर लिया।4

इस प्रकार रहीम सम्राट अकबर का धर्मपुत्र हो गया। 'अकबर की दीने इलाही' में हिन्दुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओं में उसे उससे बढ़कर बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत् यह समझना यह अधिक उपर्युक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म स मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।5

वालिद बैरम खाँ को ईरान के बादशाह ने 'खाँ' की उपाधि से विभूषित किया था। यही 'खाँ' उपाधि 'खानखाना' शब्द से पहचानी जाती है। अब्दुर्रहीम खानखाना ही रहीम कवि के नाम से जाने जाते हैं। बैरम खाँ के चरित्र की प्रायः प्रशंसा की है। वह युवावस्था में ही सम्राट हुमायूँ के नजदीक आ गये और अपनी बुद्धि कौशल से उसका विश्वासपात्र बनकर उसके बुरे दिनों में स्वयं कष्ट सहकर वह स्वामिभक्ति का परिचय देता रहा। जब सम्राट हुमायूँ ने हिन्दुस्तान पर विजय पाने के लिए प्रस्थान किया था, तब बैरम खाँ भी उसके साथ था और सेनापति के रूप में अभियान का नियंत्रण कर रहा था।

सम्राट हुमायूँ ने हमीदाबानो से निकाह कर लिया था और उससे ही

अकबर का जन्म हुआ था। बालक अकबर की देखभाल और तालिम देने के लिए सम्राट हुमायूँ ने अपने इसी विश्वासपात्र बैरम खाँ को नियुक्त कर उसका स्थान अपने राजदरबार में ऊँचा कर दिया था। सम्राट हुमायूँ हिन्दुस्तान में अपनी इच्छा से यहाँ के प्रतिष्ठित परिवारों से निकाह कर संबंध जोड़ना चाहता था। इसी इच्छा से उसने नाबालिग तेरह वर्षीय अकबर को बैरम खाँ के संरक्षण में रखकर पंजाब का मालिक बना दिया। पंजाब के मेव जमींदारी की दो बालाओं से खुद अपना और बैरम खाँ का निकाह करवा दिया। इसी मेवबाला सुलताना बेगम से बैरम खाँ की संतान थे–अब्दुर्रहीम। बैरम खाँ के इसी समय 'खानखाना' का अलंकरण प्राप्त हुआ और आगे चलकर रहीम के नाम के साथ भी जुड़ गया–अब्दुर्रहीम खानखाना।

कवि रहीम की जन्मकुंडली मुंशी देवी प्रसाद ने 'खान खाना नामा' में दी है, जिसके आधार पर रहीम का जन्म संवत् 1613 शा. 1978 मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष 14 सिद्ध किया है। अर्थात् उनका जन्म 17 सितम्बर, 1556 ई.सन् को लाहौर में हुआ था।

सम्राट हुमायूँ ने अपनी जीवनकाल में ही बैरम खाँ को अकबर का अभिभावक बना दिया था। हुमायूँ के इंतकाल के बाद बैरम खाँ ने लाहौर की राजगद्दी पर अकबर को विधिवत् बैठाकर राजतंत्र अपने हाथ में ले लिया। अकबर अपने शुभचिंतकों में बैरम खाँ का सम्मान करते थे। बैरम खाँ बुद्धिमान और चतुर होने के साथ महत्वाकांक्षी भी था। उसी महत्वाकांक्षी को देखकर सम्राट अकबर के कुछ दरबारी और घर–परिवार के लोग बैरम खाँ से ईर्ष्या करने लगे। सबने मिलकर सम्राट अकबर को बैरम खाँ के विरुद्ध भड़काया, जिसके परिणामस्वरूप उनका मन बैरम खाँ के प्रति संदेह शंकाओं से भर गया। वह उससे अपना पिंड छुड़ाने के लिए योजनाएँ बनाने लगा। अकबर को मौका मिल गया। उसने उसे हज करने के लिए मक्का जाने की व्यवस्था कर दी। बैरम खाँ भीतर–ही–भीतर कुपित हुआ और एक बार उसके मन में अकबर से विद्रोह करने का भाव भी उत्पन्न हुआ। किन्तु अपनी दीर्घकालीन सेवा और स्वामिभक्ति को देखकर उसने खुला विरोध करना स्वीकार नहीं किया।6

मन के कोने में विद्रोह का भाव उसमें सुलगता रहा। अपने परिवार को छोड़कर वह पंजाब पहुँचा, वहाँ वह शाही सेनों के संघर्ष में पड़ा। इस संघर्ष में वह शाही सेना से बुरी तरह से पराजित हुआ और फिर अंत में वह मक्का जाने के लिए तैयार हो गया। मक्का जाने के लिए वह गुजरात की तरफ चल पड़ा। पाटन पहुँचने पर मुबारक खाँ एक अफगान ने पुरानी दुश्मनी के कारण बदला लेने की इच्छा से अपने साथियों की सहायता से बैरम खाँ को मार डाला। इस प्रकार से बैरम खाँ का इंतकाल बहुत ही अप्रत्याशित तथा अवगत परिस्थिति में हुआ। हज यात्रा के लिए जाते हुए गुजरात में एक अफगान पठान में बैरम खाँ को घात लगाकर मार डाला था–अदा से आड़ में खंजर की मुँह छिपाये हुए। मेरी कजाँ को वो लाये दुल्हन बनाये हुए।

वालिद के इंतकाल से पूरे परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। उस समय नन्हा बालक रहीम अपनी अम्मी जान सुलतान बेगम की गोद में चार वर्ष का था। उनके शैशव के प्रथम चार वर्ष बड़े सुख–सम्पन्नता में बीते। परन्तु भाग्य को वह बात मंजूर नहीं थी। बैरम खाँ के विरोध का वातावरण तैयार होने लगा था। अब वे भी झंझटों से ऊब गये थे। हज करने के लिए मक्का की यात्रा पर जाने की सम्राट से अनुमति माँगी। उन्होंने अनुमति देकर यात्रा के समुचित प्रबंध कर दिये। बैरम खाँ सपरिवार मक्का यात्रा के लिए रवाना हुए। उस समय गुजरात की राजधानी पाटन थी।

वहाँ बैरम खाँ कुछ दिन रुक गये। एक दिन शाम के समय वहाँ के प्रसिद्ध सरेपर सहस्त्रलिंग में नौका–विहार के लिए कश्ती में गये। जल–विहार के बाद ज्यों ही वह नाव से उतर रहे थे कि मुबारक खाँ नामक एक अफगान पठान ने उनकी पीठ में खंजर घुसेड़कर बैरम खाँ का काम तमाम कर दिया। अल्प आयु में ही इस प्रतिकरण कवि रहीम को अपने वालिद बैरम खाँ की छत्रछाया से हाथ धोना पड़ा।

जहाँ न अपना कोई हो गिद्धों भरा सुबह हो
तब प्राण तन से निकलें।
तारा टूटते सबने देखा, ये नहीं देखा एक भी ने
किसकी आँख से आँसू टपका, किसका सहारा टूटा है।

सम्राट अकबर को बैरम खाँ की निर्मम हत्या का दुखद समाचार मिल चुका था। मासूम रहीम तथा विधवा अम्मीजान सुलताना बेगम के लिए यह समय अत्यन्त संकट का था। सम्राट अकबर उस समय लाहौर में नहीं थे। इसलिए रहीम परिवार के शुभचिंतक मुहम्मद अमीना दीवान, बाबा जाबुर और ख्वाजा मलिक अनेक मुश्किलों का सामना करते हुए रहीम को लेकर अहमदाबाद चले गये। अकबर ने उन्हें आगरा बुला लिया और अपने अभिभावक बैरम खाँ के पुत्र रहीम के साथ नहीं स्नेहभाव रखा, जो बैरम खाँ ने कभी शैशवावस्था में अकबर के साथ में रखा था। सम्राट अकबर का रहीम के प्रति गऊ–वात्सल्य भाव, मरकट वात्सल्य भाव नहीं था। गाय जबकि अपने बछड़े को अपने निकट पाती है, तब उसके थन में दूध आता है, किन्तु मरकट नव गर्म रेत से गुजरता है, उस समय वह झट अपनी संतान को अपने पैर के नीचे दबा देता है। द्वापर युग में कन्हैया के साथ भी यही बात हुई थी।

सम्राट अकबर के दरबार में बालक रहीम के उपस्थित होते ही अकबर ने रहीम को अपना फरजंद (पुत्र) घोषित कर उसका सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। जोत से जोत जल उठा, लौ रौशनी लगी, बालक रहीम विद्या के प्रति विशेष रुचि लेने लगा। रहीम की शिक्षा का अकबर ने जो प्रबंध किया था, वह समय एक प्रकार के विलक्षण थी। रहीम की प्रारंभिक शिक्षा अरबी, फारसी और तुर्की भाषा के साथ संस्कृत और हिन्दी भाषा में सम्पन्न हुई। अरबी–फारसी और तुर्की भाषा के साथ संस्कृत और हिन्दी भाषा में सम्पन्न हुई। अरबी–फारसी भाषा उस समय मुस्लिम शासकी की भाषा थी। किन्तु सेना में तुर्की लोग भी थे। अतः तुर्की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। रहीम ने इन सभी भाषाओं में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली और अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही काव्य रचना प्रारंभ कर दी थी। इस संबंध में अब्दुल बाकी ने लिखा है–'ग्यारह वर्ष क आयु में ही रहीम ने काव्य रचना प्रारंभ कर दी थी।' रहीम की काव्य गंगा अब निरंतर गति से बहने लगी।

रहीम की अम्मीजान सुलताना बेगम ने सम्राट अकबर द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से पूरा लाभ उठाया और सुपुत्र रहीम को सब प्रकार से सुयोग्य बनाने का प्रयास किया। सुलताना बेगम ने अपने वैधव्य से आँसू पोंछकर अपने सुपुत्र रहीम को पाली थी। रहीम तो तुर्क जाति में पैदा हुआ था, लेकिन उसकी जन्मभूमि भारत थी। भारतीय संस्कृति की गहरी छाप की एक वजह उसकी अम्मीजान का धर्मपरिवर्तन द्वारा मुसलमान होना भी था। उसकी अम्मीजान सुलताना बेगम हिन्दू थी। अपने मूल हिन्दू धर्म की बहुत सी पौराणिक धार्मिक मान्यताओं का ज्ञान रहीम को संभवतः अपनी अम्मीजान से प्राप्त हुआथा। बैरम खाँ को यह संतान (रहीम) वृद्धावस्था में साठ वर्ष में प्राप्त हुई थी।

चन्द वर्षों में रहीम अपने युवावस्था में दस्तक देने लगे। सम्राट अकबर ने उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अपनी धाय जीजी माहम अंगा की सुपुत्री एवं खानेआजम की बहिन माबानू बेगम से उसका (रहीम का) निकाह करा दिया–

अपनी स्मित रेखा से लिखना होगा।
(कवि जयशंकर प्रसाद, कामायनी)

रहीम के जीवन में सबसे पहले गुजरात प्रदेश पर आक्रमण करने को कठिन कार्य उपस्थित हुआ। यह कार्य उनके पौरुष और पराक्रम की परीक्षा का काम था। गुजरात को मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए रहीम ने अद्भुत शौर्य

का प्रदर्शन करके अकबर को प्रभावित यिा। इनाम के रूप में अकबर ने रहीम को पाटन मेंज जागीर प्रदान की। गुजरात फतह करने पर रहीम को सूबेदार बना दिया गया। इसके बाद कुंमलने और उदयपुर के अजय किला को जीतकर रहीम ने अपनी सैन्य कार्यकुशलता का परिचय दिया। सम्राट अकबर को गुजरात पर पहली चढ़ाई के समय जो सफलता मिली थी, उसका श्रेय रहीम को ही था। गुजरात में वहाँ के मुजफ्फर सुलतान द्वारा विद्रोह करने पर दुबारा रहीम को गुजरात विद्रोह–दमन के लिए भेजा गया। उन्होंने शत्रुदल को परास्त कर वहाँ से खदेड़कर जंगल की राह दिखला दिया। रहीम ने मुजफ्फर सुलातन को बंदी बनाया था, लेकिन कुछ समय के बाद वह भाग गया। मुजफ्फर की सेना को रहीम ने खदेड़ दिया और दुबारा गुजरात पर अपना अधिकार जमा लिया। रहीम की इस बहादुरी से खुश होकर सम्राट अकबर ने रहीम को 'पाँचहजारी मनसब और खानखाना' की उपाधि से विभूषित किया। रहीम का युद्ध क्षेत्र से चिरकाल तक संबंध रहा। गुजरात के बाद राजपूताना और सिंध पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्हें भेजा गया। मलिक अंबर द्वारा दक्षिण में विद्रोह शुरू करने पर उन्होंने दक्षिण को प्रस्थान किया। मलिक अंबर पर विजय हासिल होने पर रहीम को राजधानी में बुला लिया गया। किन्तु कुछ समय के पश्चात् कन्नौज और कालपी का विद्रोह दमन के लिए शाहजादे खुर्रम के साथ रहीम ने दक्षिण में प्रस्थान किया। गोलकुआँ और बीजापुर के सुलतान ने मुगल साम्राज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इससे खुश होकर बादशाह अकबर ने सात हजारी मनसब की उपाधि से रहीम को विभूषित किया। रहीम ने युद्ध क्षेत्र में अपनी सूझ–बूझ और योग्यता से अपने सहयोगियों को प्रभावित कर दरबार में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। जब कभी कोई उत्तरदायीपूर्ण पद खाली होता, बादशाह का ध्यान रहीम की ओर ही जाता। राजकाज में अपनी दक्षता की छाप छोड़ते हुए रहीम लोकप्रिय भी होते गये और उनका सार्वभौम सम्मान निरंतर बढ़ता गया। मुगल साम्राज्य में युद्ध का सिलसिला जारी था और रहीम उनमें पूरी तरह से जुटे हुए थे।

ये माना तुमको तलवारों की तेजी आज माना है
हमारी गर्दनों पर होगा उसका इन्तहाँ कबतक
सब शूरवीर अपने इस खाक में लिहाँ हैं
टूटे हुए एक खंडहर हैं या उनकी हड्डियाँ हैं।

युद्ध विराम के क्षणों में जब कभी दो चार मास का मास मिलता, रहीम अपनी साहित्य–साधना में रस बस जाते। ऐसे ही विराम के क्षणों में उन्होंने बाबर की आत्मकथा 'तुजुकेबाबरी' का तुर्की भाषा से फारसी भाषा में अनुवाद कर डाला। यह अनुवाद असाधारण प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार ही कर सकता था। इसकी खबर मिलने पर सम्राट अशोक प्रसन्न हुए। इस कठिन साहित्यिक कार्य करने से रहीम आरबी दुनियां में मशहूर हो गये और उनकी ख्याति दूर–दूर फैल गयी।

किस नर में दिनयता नहीं हर सार है भरपूर
देखने को सकत को उसे बस एक नयन है
मूँज इश्क गिरी आग का एक चिनगी है सूरज
इस आग के शोले का धुवाँ सात गगन है।

एक के बाद एक युद्ध करने की विवशता के कारण लंबे अरसे तक रहीम को चैन और आराम से घर में बैठने का अवसर नहीं मिल पाया था। रहीम को दक्षिण में हासिल करने के लिए भेजा गया। इस अभियान में उनका सहायक शाहजादा मुराद था। आक्रमण की तैयारी के समय रहीम और मुराद में अभियान के मार्ग को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। चाँद नामक स्थान पर रहीम और मुराद के विचार विमर्श के लिए मिले भी लेकिन यह मिलन मैत्रीपूर्ण न होकर विरोध में बदल गया, जिसके दुष्परिणाम अहमदनगर में शाही सेना को वीरांगना चाँद बीबी के साथ बड़ी लाचारी की स्थिति में संधि करनी पड़ी। मुराद जैसे अहंकारी और अनुभवहीन व्यक्ति के साथ सैन्य संचालन जैसा कार्य करना रहीम के लिए कठिन था। यह अपमानजनक स्थिति थी, जो रहीम जैसे पराक्रमी और स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अति कष्टप्रद थी। सादिक खाँ जैसा दुष्ट प्रकृति के ईर्ष्यालु मुराद के साथ में सलाहकार था और वह दुराचारी व्यक्ति रहीम के विरोध में मुराद को भड़काता तथा उसे गलत रास्ते पर ले जाता था। रहीम ने इस धुर्त व्यक्ति के साथ युद्ध में अपनी सहनशीलता और बुद्धिमत्ता का जो परिचय दिया, वह सम्राट की नजर में उन्हें ऊँचा उठानेवाला सिद्ध हुआ। दक्षिण में रहीम को अंतिम विजय प्राप्त हुई और इस विजय से सम्राट अकबर पर रहीम की धाक पैठ गयी।

दक्षिण के युद्धों में रहीम के साथ सेनापति मुराद ने कभी साथ नहीं दिया। वह अपनी मूर्खता के कारण कपटी और मद्यपानवाले लोगों से घिरा रहता था। रहीम को मुराद का यह ढंग कतई पसंद न था। बादशाह की तरफ से भेजे गये इस नामुराद सेनापति का विरोध करना भी ठीक नहीं था। किन्तु राजनीति में इस तरह की घटना आती ही रहती है। आजाद भारत में भी कश्मीर समस्या को लेकर हमारे प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री को भी 'शिमला समझौता' इसी तरह से करना पड़ा था। दक्षिण आष्टों युद्ध में भी यही वाकया रहीम को दुहरानी पड़ी। उस युद्ध में दक्षिण की सेना में सुहेल खाँ अपनी सैन्यशक्ति के बल पर मुगल सेना को ध्वस्त करने पर तुला हुआ था। बीजापुरी तानखानें के धुआँधार गोले बरस रहे थे। रहीम अपनी सेना की टुकड़ी लेकर निरंतर भिड़ते रहे और फिर अंत में उन्होंने विजय हासिल करके ही मैदान छोड़ा।

रहीम के जीवन में युद्धों का सिलसिला अभी जारी था। दक्षिण पर दोबारा विजय हासिल करने के लिए शाहजादा दानियाल को भेजकर दक्षिण कमान में रहीम को अकबर ने तैनात कर दिया। अहमदनगर का किला अभी अजेय बना हुआ था। चाँदबीबी की सेना में पारस्परिक कलह उत्पन्न हो गया तथा एक सैनिक ने चाँदबीबी का हस्ताक्षर कर दिया। ऐसी घड़ी में शाहजादा दानियाल के रहीम ने अहमदनगर पर विजय प्राप्त कर अपने रण कौशल का परचम लहरा दिया। रिश्ता में शाहजादा रहीम का जमाता था। शाहजादा दानियाल अत्यधिक शराब पीने लगा था, बाद में शराब ही उसे पीने लग गया, जिसके कारण दक्षिण अभियान के समय उसका इंतकाल हो गया। जामाता की असामयिक इंतकाल से रहीम को बड़ा आघात लगा, उन्होंने दक्षिण विजय का सपना छोड़ दिया।

सम्राट अकबर गुणग्राही और नीतिज्ञ व्यक्ति था। उन्होंने रहीम की योग्यता और कार्यकुशलता को भलीभाँति परख लिये थे। वे जब भी किसी बड़े कार्य में हाथ डालते, रहीम से परामर्श अवश्य करते और उनके सुझावों का आदर करते थे। रहीम से ईर्ष्या करनेवाले कपटी, धूर्त व्यक्तियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। राजघराने में भी उनसे ईर्ष्या करनेवाले ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं थी। रहीम के भाग्य में युद्ध और संघर्ष का बहुआयामी विस्तृत संकेत अंकित था। इस बीच सन् 1605 ई. में सत्रह अक्टूबर को सम्राट अकबर का इंतकाल हो गया। अकबर के इंतकाल के उपरांत सन् 1905 ई. में चौबीस अक्टूबर को सलीम (जहाँगीर) राजगद्दी पर बैठा। अकबर और सलीम के बीच जिस समय मनमुटाव था और सलीम का आचरण उदंडतापूर्ण था, उस समय रहीम अकबर के साथ थे तथा सलीम उनसे नाराज था। जहाँगीर के मन में रहीम के प्रति द्वेष का जो बीज अकबर के समय ही बो दिया गया था, वही शनैः शनैः अंकुरित होने लगा।

जब जहाँगीर सिंहासनारूढत्र हुआ, तब रहीम के सामने कठिन समस्या आ गयी। जहाँगीर के समय जो भी मुनासिब और सामंतगण थे, वे भी रहीम से प्रसन्न नहीं थे। एक तो नीम तीता, ऊपर से करैला तीता। फलतः रहीम एक ऐसे वातावरण में बुरी तरह फँस गये, जिसमें न तो उन्हें साँस लेते बनता था और न तो उससे बाहर निकलते बनता था। जहाँगीर के दरबारियों ने इस ईर्ष्या के अंकुर को चुगली और शिकायतों से सींचना शुरू कर दिया। कुफ्र टूटा, बुरे

दिन लदते चले गये।

तिरसठ वर्ष की अवस्था में जमकर युद्ध करना रहीम के लिए संभव नहीं था। एक युवक के संरक्षण में बूढ़े रहीम का वर्चस्व अब ओजस्वी और प्रतापी रणबाँकुरे योद्ध जैसा नहीं था। जहाँगीर ने उन्हें पुनः दक्षिण भेज दिया और यह आशा बँधी की रहीम दक्षिण में मुगल सल्तनत के विस्तार कार्य में जुट जायेंगे। सैयद सैफ खाँ वारहा के अनुभवशून्य तथा अपुंशकता के कारण अहमदनगर को जीता हुआ हाथ से निकल गया। इस पराजय का अपयश रहीम के माथे मड़ दिया। इस घटना से रहीम के भाग्य ने पलटा खाया। उनके चारो तरफ विपत्तियों के काले बादल मँडरा रहे थे।

जहाँगीर के शासनकाल में रहीम को लंबे अरसे तक उपेक्षा और अनादर के साथ दिन काटने पड़े। जहाँगीर के समय भी दक्षिण में उपद्रव और शान्ति के झंझावात चल रहे थे। उन्हें शांत करने के लिए जहाँगीर की नजर रहीम की ओर गई और उसने पुनः रहीम को दक्षिण देश में भेजने का निश्चय किया। रहीम के पुत्र शाहनबाज खाँ तथा दारा ने दक्षिण में बड़ी कुशलता से रणनीति तैयार की। अम्बर जैसा विद्रोही परास्त हुआ, ढीला पड़ गया और उसने अहमदनगर किला की कुँजियाँ रहीम को सौंप दी। दक्षिण में रहीम की धाक जमती चली गई। बीजापुर के आदिलशाह और गोलकंठा के कुतुबशाह ने बादशाह से संधि कर ली। इस युद्ध में रहीम और उसके पुत्रों शाहनबाज खाँ राब का मनसब बढ़ा दिया था। मुगल साम्राज्य का प्रभाव बढ़ता गया और छोटे–मोटे राजाओं ने संधिपत्र भेजकर युद्ध से त्राण पा लिये। इस विजय प्रयास में शहजादे शाहजहाँ का भी सहयोग था, उन्हें भी बादशाह से तीसहजारी मनसब और नजदीकि कुर्सी पर बैठने का गौरव प्रदान किया। शाहजहाँ ने इस सम्मान के बाद अपने अधिकार का समुचित उपयोग कर विजित प्रदेशों में सुव्यवस्था का प्रबंध किया। रहीम को ही उसने उस व्यवस्था का सिपहसलार बनाया। शाहजहाँ ने रहीम की प्रतिज्ञा परख ली और उन्हें ऊँचा स्थान सम्मानपूर्वक दिया। जहाँगीर ने रहीम को दरबार में बुलाया। रहीम दरबार में आये और प्रिय शिष्य जहाँगीर को राजसिंहासन पर बैठा देखकर भाव विभोर हो उठे। जहाँगीर ने दरबार में रहीम के इस आगमन की चर्चा 'जहाँगीरनामा' में भी किया है–

'एक पहर दिन चढ़ चुका था। बुरहानपुर से आकर खानखाना सेवा में उपस्थित हुए। प्रसन्नता और आनंद ने उसे ऐसा दबा रखा था कि वह यह नहीं समझ पा रहा था कि वह सर के बल आया है कि पैरों के बल। वह घबड़ाकर हमारे पैरों पर गिर पड़ा। हमने दया और कृपापूर्वक उसके सिर को उठाया और प्रेम के साथ आलिंगन कर उसके मुख को चुम लिया। वह हमारे लिए मोतियों की दो माला, कुल लाल तथा पन्नम लाया था।7

जहाँगीर के शासनकाल में रहीम सम्मान और शान से ऊँचे पदों पर आसीन रहे थे। उन्होंने बादशाह की उपेक्षाभरी नजर भी देखी थी और आदर–सत्कारपूर्वक आलिंगन पाश का सुख भी भोगा था। इन दोनों सम–विषम परिस्थितियों में रहते हुए रहीम ने अपना मान संतुलन बनाये रखा था। विपत्तियों के पहाड़ टूटते रहे और बर्फ बनकर पिघलते रहे। शाहजहाँ से रहीम के बेटों–शाहनबाज खाँ तथा उसके छोटे भाई को ऊँचा पद मिल रहे थे। रहीम का यह बड़ा दुर्भाग्य का दिन था। शाहनबाज खाँ की बुरी आदत के कारण तैंतीस वर्ष की आयु में चल बसा। कुछ दिन बाद दामाद का भी इंतकाल हो गया, उससे पहले रहीम के एक और पुत्र हैसरी का भी मद्यपान के कारण इंतकाल हो गया था। रहीम का जीवन विपत्तियों से घिरा था ही, पारिवारिक कष्टों ने बूढ़े रहीम को और अधिक कमजोर बना दिया था। पुत्र, पत्नी, पौत्र और दामाद बूढ़े रहीम की आँखों के सामने एक–एक कर चल बसे। रहीम का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था।

इन भीषण यातनाओं के बीच एक मर्मान्तक पीड़ी जनक घटना और घटित हुई, जो बड़ी रोमांचकारी दारुण घटना है। रहीम का कट्टर विरोधी महावत खाँ शाही सेना का सेनापति बनकर जब बंगाल गये, तो उसने बंगाल पर अधिकार कर रहीम के बेटे दाराब को पकड़ लिया और उसने जहाँगीर के संकेत पर घायल कर सिर काट दिया। सिर काटकर उसी दानवता एक कदम आगे और बढ़ी। उसने वीभत्स रूप में दाराब के कटे सिर को शाल में रखकर रूमाल से ढककर रहीम के पास भेज दिया–यह कहकर कि आपके लिए तरबूज पेश है। रहीम ने अपने बेटे दाराब के कटे सिर को देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से इतना ही कहा–तरबूज शाहीदी अस्तर–यह एक शहीदी तरबूज है। अल्पावस्था में ही वालिद की मौत और अपने जीवनकाल में ही पुत्रों, पौत्रों, दामाद, और पत्नी का देहांत रहीम ने देखा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रहीम का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था।

जिस रहीम का जीवन पहले सुखमय व्यतीत हुआ, उसी का अपमान तिरस्कार सहने का वक्त आ गया था। जहाँगीर के काल में ही नूरजहाँ का हस्तक्षेप शुरू हो गया। नूरजहाँ ने महावत खाँ को अपने पक्ष में करने के लिए खानखाना पद महावत खाँ को दे डाली। इससे उत्तेजित होकर रहीम ने विद्रोह कर दिया। जहाँगीर ने इस विद्रोह का सख्ती के साथ दमन किया। रहीम की विपत्तियों के दिन टूट पड़े। इस विपत्ति में रहीम दर–दर की ठोकरें खाते रहे। रहीम के विद्रोही महावत खाँ को सेनापति बनाकर दिल्ली की ओर भेज दिया। यही उसका अंतिम सम्मान और अंतिम अभिमान था। दिल्ली में उसकी विजय हासिल हुई। जहाँगीर ने पुनः प्रसन्न होकर रहीम को खानखाना पद एवं मनसब प्रदान कर दिया।

हल्दीघाटी के युद्ध में रहीम शाही सेना के साथ महाराणा प्रताप से लड़े थे। उस युद्ध में रहीम की पत्नी महाबानू बेगम के डेरे पर राजपूतों का अधिकार कायम हो गया था। महाराणा प्रताप के आदेश पर राजपूतों की परंपरा के अनुसार रहीम की पत्नी महाबानू बेगम और अन्य महिलाओं को सम्मानपूर्वक उन्हें सौंप दिया गया था। महाराणा प्रताप के त्याग और शौर्य की प्रशंसा मुगल दरबार में केवल रहीम ही करते थे।

इतिहासकारों में रहीम के जीवन की उपर्युक्त घटनाओं का वर्णन करते हुए यह सिद्ध करना चाहा कि रहीम के पास असीम साहस और शौर्य के साथ अद्‌भुत सहनशीलता तितिक्षा और करुणा थी। अपने शत्रुओं को क्षमा करने की उदारता तो उनमें अगाध थी। मुगलवंश के दो बादशाहों को उन्होंने अपनी आँखों के सामने सिंहासन पर बैठा हुआ देखा था। शाहजहाँ को अपने ही वालिद और अम्मीजान से जूझते हुए देखा था। सेनापतियों और सिपहसलारों को बनते बिगड़ते हुए देखा था। इन सभी परिस्थितियों में रहीम अपना धैर्य खोये बिना शांतभाव से अपना उत्कर्ष और अपकर्ष भी देखा था। वृद्ध रहीम के लिए विधि विधान था–राज्य व्यवस्था से जुड़ना और शासन में भाग लेना, उनकी भाग्यलिपि में लिखा था। साहित्य और कला–प्रेम रहीम की नैसर्गिक प्रतिभा का वरदान था–

गई चोर की तरह छिपकर जवानी
दगा देके घर से ये मेहमान निकाल
वो बेखबर हैं शर्म से, हम पायमाल हैं
हैरत है काम आयेगी नीची निगाह कबतक।

संदर्भ ग्रंथ–

1. स्मारक, पृ. 42
2. जीवन का झरना, आरसी प्रसाद सिंह, पृ. 15
3. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रो. एहेतशाम हुसैन, पृ. 20
4. वही, पृ. 20
5. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ. रामधारी सिंह दिनकर
6. वही,
7. जहाँगीर नामा, जहाँगीर, हिन्दी अनुवाद–ब्रजरत्न दास

आलेख

अंगिका लोक भजन में गंगा मइया

शतदल मंजरी
शोधार्थी
स्ना. हिन्दी विभाग, ति.मां. भा. वि., भागलपुर
मो. 8292090400

अंगिका प्राचीन अंग देश की प्रचलित भाषा 'आंगी' का आधुनिक नाम है। अंग का प्राचीनतम उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद में मिलता है। प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में 'अंग' महाजनपद भी एक है। इसका प्राचीनतम उल्लेख वामन जयादित्य द्वारा सातवीं सदी में रचित ग्रंथ 'काशिका–वृत्ति' में मिलता है। पुनः सत्रहवीं सदी में सिद्धांत कौमुदी के प्रणेता भट्टोजी दीक्षित ने भी व्याख्या कर उस तथ्य की पुष्टि की है। 1 कालक्रम में 'आंगी' को अंगीकार कर देशी भाषा, अंगभाषा, भागलपुरी आदि के नाम से भी जाना गया। यहाँ का लोक साहित्य, लोकगीत एवं लोक भजन का अपना विशेष स्थान है। यह लोक की परंपरागत विरासत है, मानवीय अनुभूति की अभिव्यक्ति और लोकभजन ईश्वर के प्रति पाकिजा हृदयोद्‌गार है तथा जीवन का स्वच्छ एवं साफ दर्पण है, जिसमें समाज के व्यक्त जीवन का प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है। लोकभजन में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है तथा लोकजीवन की वास्तविक ईश्वरीय भावनाओं को दर्शाता है। जिसमें भावना के साथ–साथ रसवृत्ति, कल्पना और नृत्य की लहरें–तरंगें उत्पन्न होती हैं एवं ईश्वर के प्रति प्रेम, आकर्षण, श्रद्धा, विश्वास, करुणा और कोमलता का भाव उन्मेषित होता है। लोक भजन हृदय रूपी खेत में उगते हैं और फल स्वरूप ईश्वर के चरणों में समर्पित हो जाते हैं।

अंगिका लोकभजन भी प्रकृति के उस महासंगीत का अंग है, जो हमारे जीवन विकास के इतिहास को दर्शाता है, जिसके माध्यम से हम अपने हृदय की भावनाओं, कामनाओं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर अपने जीवन में भिन्न–भिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न ईश्वरीय आराधना का संकल्प करते हैं, जिसमें आज सामूहिक ग्राम्य संस्कृति की आस्था तथा प्रकृति प्रेम के रूप में गंगा मइया के प्रति हृदयोद्‌गार हृदय की स्वास्तिक शुद्ध वाणी है, मस्तिष्क की ध्वनि नहीं। 2

अंगिका लोकभजन में गंगा मइया : 'अंगिका' अंग क्षेत्र की बोली है, किन्तु बोलचाल की वर्तमान अंगिका के जो रूप हैं, उसमें साहित्य का भंडार अत्यधिक समृद्ध है तथा अंगिका लोकभजन लोक चेतना को उजागर करनेवाले लोक साहित्य है, जो मनुष्य की अंतरात्मा को गंभीर और हृदयस्पर्शी गूंज प्रदान करती है। हृदय स्थल को स्पर्श करनेवाली तथा ईश्वरीय भावों को जागृत कर देनेवाली अनुभूति विद्यमान है, जो हमारी भावनाओं और अंतरात्मा तक को स्नात कर देती है। 3

सदियों पहले से भारत में विशेष रूप से पूजापाठ हर एक उत्सव अवसरों पर गंगा मइया का लोकभजन गाया जाता है। कोई पूजा या आराधना उनके एक बूँद जल के बिना सिद्ध नहीं होती। हर पावन त्योहार के अवसर पर ग्रामीण स्त्रियाँ गंगा मैया को अपने घर आमंत्रण देने के लिए हाथ जोड़कर गंगा–स्मरण स्तुति के साथ उनको धरती पर लानेवाले रघुवंशी तपस्वी राजा भगीरथ एवं देवात्मा हिमालय का भी स्मरण करती है। गंगा दशहरा को भक्तगण दशहरा पत्रक, जिसमें मकरवाहिनी गंगा का चित्र बना होता है तथ अगस्त्य, पुलस्त्य, वैशम्पायन आदि तपस्वी ऋषियों का श्लोक लिखा होता है। ऐसे पत्रक को अपने घर की देहली के ऊपर मुख्य द्वार पर चिपकाकर वास्तुदोष निवारण के लिए पूजा करते हैं। हिमालयी प्रदेशों में इस वास्तु पूजा का खास महत्व है; क्योंकि आकाशीय बिजली, अग्निमय और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से बचाने में इस दशहरा यंत्र–पत्रक का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। गोमुख से गंगासागर तक समूचे गांगेय प्रदेशों में गंगा दशहरा बड़े उत्साह से मनाया जाता है। सनातन धर्म मंदिरों में इस अवसर पर यज्ञ, हवन एवं गंगा माहात्म्य की कथा का दिनभर क्रम चलता है और स्त्रियाँ लोकभजन एवं गीत गायन के माध्यम से गंगा मइया के आह्वान में मगन रहती हैं–गीत–

ई हम जानती गंगा मइया अइती, दूध से लिपती अंगना–2
कथि बैठन मइया के देवन, कथि देवन पैर धोबना–2
आसनी बैठन मइया के देवन, गंगा जल पैर धोबना–2
कथि भोजन मइया के देवन, कथि देवन मुँह पोंछना–2
हलवा–पूरी मइया के भोजन, अंचरी देवन मुँह पोंछना–2
कथि पहिरन मइया के देवन, कथि देवन खोयछा भरना–2
चुनरी देवन मइया के पहिरन, दूबी–धान खोयछा भरना–2

ब्रह्मपुराण के अनुसार ज्येष्ठ शुक्लपक्ष की दशमी तिथि एवं हस्त नक्षत्र में गंगा का स्वर्ग से पृथ्वीलोक में अवतरण हुआ था। इसीलिए इस तिथि को गंगावतरण अथवा गंगा–दशहरा के नाम से सनातन धर्म में बहुत ही श्रद्धा एवं भक्ति से धार्मिक पर्व के रूप में मनाया जाता है। इसीलिए इस तिथि को गंगा–स्नान, जप–तप और विशेष उपासना करने के क्रम में ऐसे अवसरों पर गाये जानेवाले लोकगीत, लोकगाथाओं, लोककथाओं और लोक भजनों का समृद्ध भंडार है। हमारी अंग नगरी में एक–एक गाँव में एक–एक नारी के कंठ से अनेकानेक लोकभजन में गंगा मइया की श्रद्धा भाव विराजती है–गीत–

गंगा मइया हे तनिये तनिये हुवो न सहाय–2 जय जय–2
पहले जो दियो मइया–2 शीथी के सिंदुरवा–2
जय–जय मइया हे, अबला पद दियो न छोड़ाय–2
दूसरो जे दियो मइया–2 गोदी के बलकवा
जय–जय मइया हे, बांझीन पद दियो न छोड़ाय–2
तीसरा दे दियो मइया–2 अन्न–धन–संपतिया
जय–जय मइया हे, निर्धन पद दियो न छोड़ाया–2

कहा गया है कि किसी भी साहित्य का वहाँ की संस्कृति से सीधा संबंध होता है, जिस देश की संस्कृति जितनी ही प्राचीन होती है, उसके परंपरा, विश्वास, आस्था और अनुगमन की जड़ें उतनी ही गहरी होती है और व्यापक भी। स्त्री, पुरुष दोनों की लालसा, वासना,विलासिता आदि मनोवृत्तियाँ दो भिन्न उद्देश्यों से प्रेरित होकर एक ही लक्ष्य में सम्मिलित हो ईश्वर की शरण में जाती है। लोकभजन में भी यत्र–तत्र पौराणिक तथ्यों का समावेश किया गया है। बहुत–से लोकभजन जिनका आधार कोई–न–कोई पौराणिक देवी–देवता ही है, जो परंपरागत गीत समाज को अपनी दिशा के बराबर आत्मशक्ति देते रहे हैं। गंगा मइया सर्वप्राचीन पौराणिक पावन विष्णु धाम है, जहाँ विभिन्न अवसरों पर गंगास्नान का पुण्य अर्जित करते हैं अथवा घर के निकट के पवित्र सरोवरों या घर पर भी गंगा का ध्यान कर स्नान के जल में गंगा–स्नान का पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं। शास्त्रों में कहा गया है–

गंगागंगेति यो ब्रूयात योजनानाम् शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति।।

अर्थात् गंगा की सन्निधि से कोसों दूर होते हुए भी जो गंगा–गंगा ऐसा बोलते हैं, वह समस्त पापों से विमुक्त होकर विष्णुधाम के अधिकारी होने की कामना करते हैं। कहा भी गया है– 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। गंगा मइया समस्त पापों का नाश कर देती है। भक्त अपने किये गये समस्त पापों के निवारण के लिए भजन का मंगलगान करते हैं–

मैया कोन कलम से लिखलो हमर कपार हे–2
जिंदगी दुख के पहाड़ हे न–2
सब दिन तोहरे नाम लेलौं तहियो तनियो ध्यान न अइलौं
मैया खोलूँ न नयन सुनियो हमर पुकार हे–2
जिंदगी दुख के पहाड़ हे न–2

हम तो चरण छूवै छी आपन विपदा लोर बहाय के कहै छी
एक बार करियो मैया हमरो पर विचार–2
जिंदगी दुख के पहाड़ हे न–2
मैया कोन कलम से लिखलो हमर कपार हे–2

गंगाजल में स्नान और गंगा मैया का भजन करने से भक्त के समस्त पापों का नाश हो जाता है। किसी कार्य में गंगा जल की एक बूँद अभिषेक के जल में मिलाकर त्रिविध ताप निवारणी बन जाती है। गंगाजल में ऐसे औषधीय तत्व विद्यमान है, जिनसे अनेक असाध्य रोगों का इलाज संभव कहा गया है। इसलिए भारतीय जनमानस में गंगा का बहुत महत्व है, तभी तो घर में गंगाजल को पात्र में सुरक्षित रखने पर वर्षों बाद भी उसमें कीड़े नहीं पड़ते हैं। आदि शंकराचार्य ने भी गंगाजी के एक अंश का स्पर्श भी मोक्ष का कारण बताते हैं तथा आधि–व्याधियों के निवारण के लिए गंगाजल को परम औषधि एवं वैद्य भगवान विष्णु को बताते हैं–' औषधं भागीरथी तोयं वैद्योनारायणो हरि: ।'

धर्मशास्त्र के अनुसार पाप दस प्रकार के कहे गये हैं–तीन प्रकार के शरीर के और चार प्रकार के वाणी–द्वारा किये गये एवं तीन मानसिक रूप से होनेवाले पाप। अत: गंगा–स्नान एवं गंगा–स्नान इन दस प्रकार के पापों को समाप्त कर मानव को कायिक, वाचिक, मानसिक रूप से निर्मल कर देती है। गंगा नदी में स्नान–दान के बाद जलपात्र में जल भरते समय स्त्रियाँ अपने कंठ से मधुर स्वर में भजन गाती हैं–गीत–

जल लावे गेलिये हम यमुना किनार
सुनु हे गंगा मइया जलवा लानत भए गेल देर–2
भोर भिनसर गेलिये–2 यमुना किनार
सुनु हे गंगा मइया, घटवार सुतल निभोर–2
अबकी कसूर मैया–2 माफ करी दे हो–2
भरझारी जलवा चढ़ाव, सुनु हे गंगा मइया–2
मांग सिंदूर मैया रखियो अमर–2
सुनु हे गंगा मइया, कर जोरी विनती करूँ–2

लोकगीत और लोकभजन गाने के क्रम में गीतकार अपना व्यक्तित्व लोक को समर्पित कर देता है, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूर लोक समाज अपनाता है। लोकभजन शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह नहीं करते हुए सामान्य लोक–व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव के अपने आनंद की तरंग छंदोबद्ध वाणी में सहज उद्‌भुत अभिव्यक्ति है–गीत–

लाल लाल चुनरी मैया हे आसनी लगैयो हे–2
मैया हे बैठ हे मैया आसनी हे लगाय–2
कि मैयो के हम चरण पखारब हे–2
चरण पखारब मैया हे शरण लगैयो हे–2
मैया हे मांग के सिन्दुरवा रखियो अमर कि
मैया के हम अरजी करब हे–2

इस प्रकार गंगा–दशहरा का पर्व शास्त्रीय विधि–विधान लोकरीति एवं भक्ति–भावना तीन प्रकार से मनाया जाता है और भक्त मइया से अपनी विनती और अरज करते हैं–गीत–

मैया हे सुनियो हमर विपतिया, माँ हम केना रहबै है–2
केना रहबै हे मैया–2 मैया हे सुनियो–2
निर्धन अज्ञान बनैलो तनियो न ज्ञान न दियलो
माँ हम केकरा कहबै हे–2 मैया हे–2
घर न दुआर न दियलो दुखवा अब सहलो न जाय छै
माँ अब संकट हरियो हे माँ हम केकरा कहबै है–2, मैया हे–2
जग के ठुकरायल गेल छी, शरण तोहीं के आयल छीं
माँ तनियोक दया दिखायवियो हे–2
मैया हे सुनियो–2

गंगा के लोकगीतों में यह भी एक प्रसिद्ध अंगिका लोकगीत है, जो गंगा मइया को समर्पित है–गीत–

गंगा मइया पारवती, जिनकर नाम लिये तीर जाय
गंगा मइया पारवती, जिनकर चरण छूये तरी जाय
मांगों गंगा मइया के टीका शोभै, झुनकी अजब बनी हे–2
गंगा मइया पारवती, जिनकर नाम लिये तरी जाय
गंगा मइया पारवती, जिनकर चरण छुये तरी जाय–2

एक फिल्मी गीतों में भी गंगा मइया को भारत के लिए वरदान कहना कितना सत्य है–गीत–

हर–हर गंगे, हर–हर गंगे
भारत के लिए भगवान का एक वरदान है गंगा
सच पूछो तो इस देश की पहचान है गंगा।
जय–जय गंगे, हर–हर गंगे।

समस्त भारत में लोगों के हृदय में रची बसी है गंगा। मैथिल कोकिल कवि विद्यापति ने भी इन शब्दों में गंगा के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं–

कत सुखसार पाओल तुअ तीरे, छाड़इत निकट नयन बह नीरे।
कर जोरि विनमओ विमल तरंगे, पुन दरसन होए पुनमति गंगे।।

विद्यापति की अटूट भक्ति गंगा मइया के प्रति थी। इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी गंगा की भक्ति में काव्य की रचना की है–

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच–बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति।।
लोल लहर लहि पावन एक पै इस इम आवत।
जिमि नर–गन मन विविध मनोरथ कर मिटावत।

गंगा–वर्णन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इस प्रकार युगों–युगों तक बहनेवाली गंगा की धारा महाराज भगीरथ की कष्टमयी साधना की यशगाथा रहेगी। गंगा मइया प्राणिमात्र को जीवनदान ही नहीं, मुक्ति भी प्रदान करती है। भारत तथा विदेशों तक में गंगा मैया की महिमा गायी जाती है। गीत–

मचिया बैठली गंगा मइया, झाड़े लंबी हे केश।–2
कथि केरो कंगही हे गंगा मइया, कथि केरो हो काम
टूटी गेलै कंगही हे गंगा मइया, छिलकी गेलै हो काम। मचिया–2
ताहि घुण लगतो सोनरा, ताहि घुण रे तोहार
कोन हाथ गढ़ले रे सोनरा, कंगही रे हमार। मचिया–2
जानु देहो गरिया गंगा मइया, जानु देहो हे श्राप।
फेरू से गढ़ायब गंगा मइया, कंगही हे तोहार। मचिया–2
अबकी कसूरबा गंगा मइया करि दियो हे माफ।
फेरू से बनायब गंगा मइया, कंगही हे तोहार। मचिया–2

प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है कि महाराज सगर के साठ हजार मृत प्रजा–पुत्रों के उद्धार हेतु गंगाजल की आवश्यकता पर महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए कठोर तप किया था। 'दशहरायै गंगायै नम:।

अत: गंगा का स्मरण भक्तिभाव एवं श्रद्धा से करने पर उनकी प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त हो जाती है। पृथ्वी पर जबतक गंगा बहती रहेगी, तबतक इनकी महिमा गायी जाएगी। लोकभजन साहित्य में उपलब्ध प्राय: सभी रसों में मिलते हैं। परन्तु भक्ति रस कभी न समाप्त होनेवाले इसके स्रोत हैं। अंगिका लोकभजन में गंगा मैया सर्वोपरि है।

1. अखंड ज्योति, नवंबर 2017, डॉ. प्रणव पंडया, कैसे बने हम प्रभुकृपा के पात्र, पृ. 11
2. अंगिका लोकगीत, डॉ. गायत्री देवी, मीनाक्षी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 32
3. वही, पृ. 35
4. विद्यापति पदावली, डॉ. नरेन्द्र झा, अनुपम प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1988, पृ. 152

आलेख

यादगार क्षण
सात जनवरी दो हजार सात

मनोरंजन सहाय सक्सेना
इन्द्रपुरी लालकोठी
टोंकरोड जयपुर
मो. 9461093077

अमेरिका वासियों को 9/11 और मुम्बई वासियों को 26/11 कभी नहीं भूलेगा, उसे भी 1.1.7 यानी 7 जनवरी की तारीख कभी नहीं भूलेगी। उस दिन की स्मृतियाँ उसे आज भी कचोट रही थीं। मगर उसके दर्द का कारण न तो किसी आतंकवादी संगठन द्वारा किया बम विस्फोट था, ना ही किसी प्राकृतिक आपदा की वजह से था। उसका दर्द तो उसकी पढ़ने के साहित्यिक शोक के कारण उसे मिला था।

हुआ यह कि यह अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य को लेकर जब कॉलेज में पढ़ रहा था, तब नेश, टेनीशन, इलियट और हिन्दी के पुरातन और आधुनिक कवियों को पढ़ते–पढ़ते उसे हुए साहित्य से गहरा लगाव हो गया था। वह किसी भी तरह के फुर्सत के क्षणों में कॉलेज लायब्रेरी में पाया जाता था। हिन्दी और अंग्रेजी की कई पत्र–पत्रिकाएँ वह पढ़ता और लेख लिखता था। किसी प्रोफेसर को पढ़ाते–पढ़ाते अगर किसी कवि या लेखक का कोई उद्धरण याद नहीं आता तो वह झट से बता देता था। इसलिए छात्राओं में वह चर्चा का विषय बन गया था। लड़कियाँ उससे मिलकर अपने पाठ्यक्रम में साहित्य संबंधी समस्याएँ सुलझाया करती थीं।

आम निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों के युवाओं की तरह जब वह बी.ए. पास करके कॉलेज से बाहर हो गया, तो उसे नौकरी की जरूरत महसूस हुई, तब उसे पता चला कि शेक्सपियर से लेकर इलियट तक और सूरदास से लेकर नीरज तक साहित्यकारों के बारे में उसका ज्ञान उसे रोजी रोटी नहीं दिला सकता।

एक साल यूँ भटकने के बाद उसे कॉलजे के एक मित्र की ख्यातिनाम राजनैतिक हस्तीवाली माँ की कृपा से जब एक प्राइवेट सीनियर सैकेण्डरी स्कूल में किसी लीव वेकेंसी के कारण तीन महीने के लिए दो हजार रुपये महीने पर इंग्लिश टीचर का जॉब मिल गया तो उसने मित्र की माँ के चरण स्पर्श करके और मित्र को गले लगाकर उसका एहसान जीवन भर नहीं भूलने का वादा करके उसे तुरंत लपक लिया।

यह जॉब यद्यपि अल्पकालीन था,मगर उसे अतिरिक्त इस बात की हुई कि उसके पढ़ने का शौक साथ–साथ चलत रहेगा। शिक्षण कार्य करते हुए एक सप्ताह हो गया, तो उसने स्कूल की लाइब्रेरी के बारे में जिज्ञासा की, तब एक टीचर ने मुस्कुराते हुए लाइब्रेरी के नाम पर जिस सीलन की बदबू से सराबोर छोटे से कमरे के दर्शन उसे कराये, उसमें तीन आलमारियों में बेहद पुरानी पुस्तकें भरी हुई थीं। आलमारियों को देखते ही लगता था कि उन्हें बहुत कम ही खोला गया है। महिलाओं की एक पत्रिका और दो तीन स्थानीय समाचार पत्र एक मेज पर बेतरतीब से पड़े हुए थे। लाइब्रेरी की हालत देखकर, उसने प्रिंसिपल से भेंटकर जब इस विषय में बात की तो पहले तो उन्होंने उसे ऊपर से नीचे तक घूरकर देखा, मगर उनके घूरते ही उसका परेशान चेहरा देखकर जब वह संतुष्ट हो गई कि वह एक हानिरहित पढ़ाकू युवक है, तो उसे बैठने का इशारा किया। वह उन्हें धन्यवाद देकर बैठ गया तो वह बोली–'उपेन्द्र! अभी तुम प्योरली सब्सीट्यूट पोस्टिंग पर हो।कॉलेज छोड़े तुम्हें ज्यादा समय नहीं हुआ है, फिर भी कॉलेज की रूमानियत से निकलकर दैनिक जीवन के ठोस धरातल पर जितनी जल्दी सामंजस्य बिठा लो अच्छा रहेगा। खाली समय में ज्यादा पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने के बजाय दो–एक ट्यूशन ले लो, नहीं तो दो हजार में क्या तो घर परिवार को दोगे और कितनी पत्र–पत्रिकाएँ खरीदोगे। मुझे तुम्हारी पारिवारिक स्थिति का पता है, इसलिए सलाह दे रही हूँ। बुरा लगे तो इग्नोर कर देना। वैसे मैंने तुम्हें एक सलाह स्कूल की प्रिंसिपल के बजाय एक शुभचिंतक की तरह दी है।' यह कहकर उन्होंने बड़ी ही अपनत्व भरी दृष्टि से उसे देखा तो वह लज्जित– सा हो गया और केवल जी, कहकर डबडबाया–सा कमरे से बाहर निकल गया।

इसी तरह दिन बीतने लगे। शाम को वह पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए सार्वजनिक पुस्तकालय जाने लगा। मगर वहाँ अधिकतर पत्र–पत्रिकाएँ कई टाइमपास पाठकों के हाथ से गुजरते हुए क्षत–विक्षत स्थिति में मिलती थी और स्तरीय साहित्यिक पत्र पत्रिकाएँ वाचनालय में होती ही नहीं थीं। उनके बारे में पूछने पर या तो अभी आई नहीं होगी, जवाब मिलता, या देख लो, यहीं कहीं कोई पढ़ रहा होगा, का निर्देश मिश्रित दिलासा मिल जाती थी। कई दिनों के बाद एक दिन उपस्थित एसिस्टेंट लाइब्रेरियन से उसने तीव्र प्रतिवाद किया, तो उसने बड़ी शान्ति से उसे अपने पास बैठा कर समझाया कि स्तरीय साहित्य पत्र–पत्रिकाएँ दोपहर के बाद संबंधित विभाग के तमाम सरकारी पदाधिकारियों के घरों में जाती हैं, इसलिए सायंकालीन पाठकों को माह के अंत में ही उपलब्ध हो पाती है।

इसी तरह तीन माह बीत गये। उस दिन क्लास खत्म होते ही प्रिंसिपल ने उसे बुलाया तो वह एक ज्ञात आशंका से अंदर तक काँप गया।

प्रिंसिपल के कमरे में वह दाखिल हुआ तो उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उसको स्वयं की आवाज गले में फँसती हुई लग रही थी। प्रिंसिपल की अनुभवी आँखों ने उसके चेहरे पर सब कुछ पढ़ लिया था, इसलिए उन्होंने उसे बैठने का संकेत करके चपरासी को पानी लाने का आदेश लेकर बोली–उपेन्द्र! मैंने तुम्हें यह कहने के लिए बुलाया है कि अवकाश पर गई टीचर ने अवकाश बढ़ा लिया है। मैंने तुम्हारे पढ़ाने के ढंग देखकर ट्रस्ट के अध्यक्ष से इस बाकी सेशन में तुम्हें कंटीन्यू करने की सिफारिश की थी, जो उन्होंने मान ली है। अब इस शेसन में तुम कंटीन्यू करो। ठीक है?

अल्प वेतन की ही अल्पकालीन नौकरी के भी समापन की आशंका से उसकी आवाज अभी गले में फँसी हुई थी, इसलिए वह धन्यवाद भी नहीं कह सका। केवल स्वीकृति में सिर हिलाकर उठा और कृतज्ञता दिखाते हुए प्रिंसिपल के पैर छू लिये।

वह वर्ष 2007 के जनवरी मास की 7 तारीख यानी 7.1.7 थी। इसी 7 जनवरी की शाम को जब वह घर पहुँचा तो उसे एक लिफाफा दिया। लिफाफे पर एक ख्यातनाम अंतर्राष्ट्रीय अंग्रेजी पत्रिका नाम छपा था, उसे झटपट लिफाफा खोलकर देखा। पत्रिका के प्रबंध निदेशक की ओर से उसके नाम एक पत्र था, जिसमें किन्हीं मिस्टर शर्मा द्वारा उसका नाम उन तक भिजवाने के लिए उन्हें धन्यवाद देते हुए लिखा था कि इस अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का सम्माननीय ग्राहक बना लिया गया है और उसे निर्धारित कीमत से आधे दामों पर पत्रिका सालभर भेजी जाएगी। यह इसके पहले अंक की वी.पी.पी. मात्र साढ़े चार सौ रुपये चुकाकर अवश्य प्राप्त कर लें। पत्र के साथ ही एक प्राफॉर्मा संलग्न था, जिसमें उसे पत्रिका दस अन्य सदस्य बनाकर भेजने पर पत्रिका के स्वीपवॉश कान्टेस्ट (परिवर्तित नाम) में एक प्रतिभागी के रूप में शामिल किये जाने का उल्लेख था।

इस कथित स्वीपवॉश कांटेस्ट के बारे में बताया गया है कि पत्रिका इस प्रतियोगिता के अंतिम चयनित चार प्रतियोगियों को 25 लाख रुपये प्रति प्रतिभागी देगी तथा शेष प्रतियोगियों को 5000 आकर्षक पुरस्कार, जो

कम–से–कम दस हजार रुपये मूल्य के होंगे, वितरित करेगी। एक वाक्य इस पत्र में रेखांकित किया गया था कि वह इस महानगर से इस प्रतियोगिता के लिए चुना गया एकमात्र भाग्यशाली व्यक्ति है। कांटेस्ट में कोई तिथि या अवधि घोषित नहीं की गई थी।

पत्र पढ़ते–पढ़ते उसे लगा कि 7 जनवरी उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण तारीख बनने जा रही है। 7 जनवरी को सुबह उसे अपनी छोटी–सी नौकरी की कार्य अवधि की सूचना मिली और शाम को यह पत्र। मगर ज्यों ही उसे साढ़े चार सौ रुपये की वी.पी.पी. छुड़ाने की बात याद आई, वह उलझन में पड़ गया।

तीसरे ही दिन उसके स्कूल से लौटने पर माँ ने उसे बताया कि पोस्टमेन वी.पी.पी. लेकर आया था, मगर घर में साढ़े चार सौ रुपये नहीं होने के कारण नहीं छुड़ा सकी। पोस्टमेन उसे वापिस ले गया और डाकखाने जाकर तीन दिन में उसे छुड़ा लेने का निर्देश दे गया है।

जैसे–तैसे रुपये का इंतजाम करके चौथे दिन डाकखाने पहुँचा तो संबंधित क्लर्क ने उसे सुबह आते ही सबसे पहले नहीं छुड़ाई गई वी.पी.पी. वापिस भेजने का काम करने की बात बताई, तो वह भड़क गया। उसने क्लर्क को कहा कि कार्यालय का समय 5 बजे तक होता है, तब उसने सुबह सबसे पहले यही काम क्यों किया, तो क्लर्क नियमों का हवाला देते हुए अपने काम में जुट गया। काउंटर पर लाइन में पीछे खड़े लोगों ने उसे लाइन से धकियाकर काउंटर से हटा दिया तो उसे ऐसा लगा कि इन सबने मिलकर उसके हाथ से पच्चीस लाख का बियरर चैक छुड़ा लिया है। वह लाइन से निकलकर घर लौटा, तो बेहद उदास था।

इसके बाद 5–7 दिन ही बीते थे कि उसे पत्रिका की ओर से एक पत्र मिला, जिसमें वी.पी.पी. नहीं छुड़ाने के कारण छपे हुए थे, उसे सही कारण पर निशाना लगाकर पत्र वापिस पत्रिका को तुरंत भेजना था, जिससे कारणों पर विचार करके उसे वी.पी.पी पुनः भेजी जा सके। पत्र पढ़कर उसकी उदासी के बादल छँट गये और उसके 'आउट आफ स्टेशन' होने के कारण पर निशान लगाकर पत्र भेज दिया। सातवें दिन वी.पी.पी. वापिस आ गई। अबकी बार उसने साढ़े चार सौ रुपये माँ के पास अग्रिम जमा करा दिये थे, इसलिए माँ ने वी.पी.पी. छुड़ा ली थी।

पत्रिका देखकर उसे खासी निराशा हुई। पत्रिका के 108 पृष्ठों में 48 पूरे पृष्ठ के विज्ञापन थे। 32 आधे पृष्ठ विज्ञापनों से भरे थे। सभी विज्ञापन भारती विशाल औद्योगिक घरानों के उत्पादों से थे। दो लेख यूरोपीय समाज की समस्याओं पर आधारित तथा एक लंबा यात्रा वृतांत किन्ही यूरोपीय लेखकों के थे। केवल एक लेख भारतीय लेखक का–भारत में बैंकिंग की खामियों पर बेहद क्लिष्ट अंग्रेजी में था, जिसमें बैंकिंग से संबंधित तकनीकी शब्दों की भरमार थी। कुछ स्थायी स्तंभ थे, जिनमें प्रकाशित सामग्री का अर्थ समझने के लिए यूरोपीय समाज की सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान आवश्यक था। मतलब पत्रिका में एक आम मध्यम वर्गीय अंग्रेजी जानकार भारतीय के लिए कुछ विशेष पठनीय नहीं थी। मगर 25 लाख इनाम में प्रतिभागिता के आकर्षण से उसने पत्रिका का यह दोष माफ कर दिया।

अब वह दस ग्राहक बनाने की मुहिम में जुटा तो उसे पता चला कि यह काम उस जैसे निम्न–मध्यमवर्गीय परिवार के शिक्षित युवक के लिए मुश्किल ही नहीं असंभवप्राय ही था; क्योंकि आम आदमी अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का नाम भी नहीं जानता था और पत्र–पत्रिकाएँ उसके घरेलू बजट में फिट नहीं हो पाने के कारण उसकी दिलचस्पी भी इनमें नहीं ही होती है और जहाँ संभावना बनती थी, वहाँ एक तो उसकी स्वयं की पहुँच की संभावना नगण्य ही थी, फिर भी उसने ऐसी एक–दो जगह किसी माध्यम से पहुँच बनाई तो उसे पता चला कि वहाँ यह पत्रिका स्वयं पहुँच रही थी, जबकि उस वर्ग के लोगों के पास पत्रिका वगैरह पढ़ने का समय ही नहीं होता, पत्रिकाएँ उनका साहित्यबोध और इन्टीलेक्चुऐलिटी के प्रदर्शन के लिए ड्राइंगरूम में सेंट्रल टेबिल पर पड़ी रहती है।

वह इन दिनों ग्राहक नहीं बना पाने की समस्या को लेकर इतना परेशान हो गया था कि वह जिस दिलचस्पी से छात्रों को पढ़ाता था, वह खत्म हो गई थी। एक दिन प्रिंसिपल ने उसे बुलाया और कहा–''उपेन्द्र! इंग्लिश में तुम्हारी ऐफिसियेन्सी और पढ़ाने की लगन देखकर मैंने तुम्हारा नाम रिकमण्ड किया था, मगर ट्वेल्थ क्लास की छात्राएँ कह रही थीं कि अब तुम पढ़ाने में उतना इंट्रेस्ट नहीं ले रहे हो। अगर यह बात कॉलेज की सेक्रेटरी तक पहुँच गई तो सेशन इण्ड तक तुम्हारी कंटीन्यूटी मुश्किल हो जाएगी। यहाँ तो महीने दो महीने के जॉब के लिए भी लाइन लगी रहती है। अगर कोई पर्सनल प्राब्लम है तो उसे जॉब के साथ मिक्स मत करो। वैसे भी मार्च में ट्वेल्थ के स्टुडेंट की वार्षिक परीक्षा होगी। अगर जरूरत हो तो एक्स्ट्रा क्लास लो। मगर स्टुटेंड की शिकायत नहीं आनी चाहिए।

प्रिंसिपल की बात सुनकर एक दफा तो उसे तैश आ गया। उसे लगा कि कह दें कि दो हजार रुपये में आठ घंटे माथाफोड़ी के लिए रख लें किसी दूसरे को। इतना श्रम कुछ दिन ही करके अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के दस ग्राहक बना देगा तो पत्रिका उसे पच्चीस लाख के इनाम का प्रतिभागी बना देती, तो उसे इस स्कूल में टीचर से क्लर्क तक का फटीचर काम करते हुए पूरी जिंदगी में मिलना तो दूर, सोचना भी नसीब नहीं होगा, मगर फिर किसी अज्ञात चेतना से थोड़ा संयमित होकर 'जी अच्छा' कहकर चला आया।

शाम को वह आदत के मुताबिक पब्लिक लाइब्रेरी जा रहा था कि उसका कॉलेज के दिनों का दोस्त मिल गया। उसने उससे उदासी कारण पूछा तो उसने कुछ हिचकिचाहट के साथ अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के दस ग्राहक बनाने की समस्या बताई। सुनकर दोस्त हँस पड़ा तो उसे लगा कि इंटरमीडियट पास निम्न–मध्यमवर्गीय अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का महत्व ही नहीं समझ रहा, इसलिए इससे बात करना बेकार है। उससे पीछा छुड़ाने के लिए–'अरे यार! माँ की तबीयत खराब है, उनकी देवा लेकर जाना है, इसलिए अभी चलता हूँ, फिर मिलेंगे।'' कहकर वह चल ही दिया था। मगर दोस्त ने जब पूछा–अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के दस ग्राहकों के बारे में क्या सोचा है, तो वह पुनः उलझन में पड़ गया। उसके दोस्त ने जब उसे वह फार्म देने के लिए बोला तो उसने काफी संशय के साथ फार्म उसे देते कहा–यार! तुम हो तो शुरू से जुगाडू, मगर यह अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के ग्राहक बनाने का मामला है, तुम ..... कहते हुए वह असमंजस में हकलाने लगा तो–तुझे आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से, कहकर दोस्त हँसता हुआ चला गया, तो आशा की धुंधली किरण से उसकी उदासी फिलहाल तो दूर ही हो गई।

चार–पाँच महीने बीत गये, मित्र न तो मिला, न उसकी ओर से कोई सूचना स्कूल के फोन नंबर आई तो वह आशंकित हुआ कि उसके मित्र ने शायद उसका मन रखने के लिए एक तसल्ली दे दी थी। अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के दस सदस्य बनाना हँसी खेल थोड़े ही है, यह सोचकर उसने अपने मित्र से सही स्थिति जानने और काम नहीं होने पर उसे लताड़ने का निश्चय किया।

वह शाम को लाइब्रेरी जा रहा था तो उसका वह दोस्त रास्ते में ही मिल गया। दस ग्राहक बना देने की बात, पूछने पर वह दोस्त हँस पड़ा, तो वह बुरा मान गया। तब उसका दोस्त बोला– 'भैया! कई दफा तेरी नकल करके परीक्षा में पास होने का तेरा एहसान है मुझपर, पर इसलिए तुझे बता देता हूँ। तुम ज्यादे पढ़े लिखे, समझदार साहित्यिक लोग बड़ी जल्दी भावनाओं में बह जाते हो, अकल से काम हीं नहीं लेते हो। तुम्हारी अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के निदेशक के पत्र को पहले मैंने तुम्हारे जैसे एक अंग्रेजी पढ़े–लिखे दोस्त से समझा। उसने बताया कि पत्र में ग्राहक बनाने के लिए ही लिखा गया है, उनका

सदस्यता–शुल्क भेजने को थोड़े ही लिखा गया, सो मैंने अपने दस दोस्तों के नाम व पते प्रोफार्मा में भरवाकर भेज दिये। अब पत्रिका के प्रबंध निदेशक महोदय सभी दस लोगों को पत्र भेजेंगे कि वह अकेले भाग्यशाली व्यक्ति है, जिनको इस पत्रिका का ग्राहकर बनकर एक करोड़ रुपये के स्वीपपोश प्रतियोगिता का प्रतिभागी बनने का अवसर मिला है और उन्हें भी दस ग्राहक बनाने और पत्रिका के प्रथम अंक की वी.पी.पी. साढ़े चार सौ रुपये देकर छुड़ाने का आग्रह किया जाएगा। कुछ लोग रुपये देकर वी.पी.पी छुड़ाएँगे और दस ग्राहक बनाने की समस्या पाल लेंगे तुम्हारी तरह और उसमें जी–जान से जुट जाएँगे। अब जरा अकल से सोचो मेरी भेजी लिस्ट के लोग वी.पी.पी. नहीं छुड़ाएँगे तो तेरे–मेरे स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ेगा! बच्चू यह मार्केटिंग का फंडा है। इसे हम जैसे इंटरमीडिएट पास इंटरक्लास के ब्रोकर ही समझ सकते हैं तुम जैसा इंटेलिजेंट, जिनियस पढ़ाकू नहीं।

दो तीन महीने बीत गये। पत्रिका अब हर माह नियमित आ रही थी। अचानक एक दिन उसे एक पत्र मिला, जिसके साथ में अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के महत्वपूर्ण प्रकाशनों की सूची थी और उसे इनमें से कम से कम एक आदेश इसलिए देने का आग्रह किया था, ताकि स्वीपवॉश कंटेस्ट में उसकी प्रतिभागिता कन्फर्म किया जा सके। साथ ही प्रबंध निदेशक का पत्र भी था, जिसकी भाषा दुनिया के इन दुर्लभ ग्रंथों को तुमने बाजिव दामें में पाने के अवसर को 'न' कहकर एक करोड़ रुपये के स्वीपवॉश कान्टेस्ट में अपनी प्रतिभागिता का कन्फर्म नहीं होने देने की मूर्खता कैसे कर सकता है। कम से कम आप तो नहीं ही करेंगे।'

सूची पत्र में सबसे कम कीमत के दुर्लभ ग्रंथ की कीमत चार सौ रुपये थी। उसने उसपर निशान लगाकर आर्डर दे दिया। एक सप्ताह में ही वह पुस्तक आ गई, जो सहारा के रेगिस्तान में पाये जानेवाले कुछ रेंगनेवाले जंतुओं के बारे में किसी आस्ट्रेलियन सेलानी का रंगीन चित्रमय विवरण था। पुस्तक ८० पृष्ठों की एक पत्रिका थी, जिसमें ८–१० पृष्ठ विभिन्न सौंदर्य प्रसाधनों और महिलाओं के अंगवस्त्रों के विज्ञापनों से भरे हुए थे।

पत्रिका को देखकर–एक बार तो इसके लिए चार सौ रुपये उसने कैसे जुटाये, याद करके वह खिन्न हो गया और उसे अपने दोस्त की बात याद आई, मगर पच्चीस लाख के इनाम की बात याद आते ही वह सब कुछ भूलकर स्वप्नलोक में खो गया।

एक माह बाद ही दीपावली आनेवाली थी। पत्रिका की ओर से फिर एक सूचीपत्र प्राप्त हुआ, जिसमें अपने परिवार और मित्रों को दीपावली पर दिये जानेयोग्य आकर्षक उपहारों के चित्र थे। अबकी बार आदेश की बाध्यता तो नहीं थी, मगर प्रबंध निदेशक का पत्र लगभग उसी बेहूदी भाषा में उपहारों की सूची पत्र के साथ पत्रिका द्वारा प्रस्तावित मूल्यों पर खरीददारी नहीं करने के बारे में संलग्न था।

अभी तक उसने छोटी बहन को कोई उपहार नहीं दिया था। इसलिए उसने सूची में सबसे कम मूल्य के आइटम प्लेटिनम ब्राइट चेनमय पेंडुलम के कोड पर निशान लगाकर सूची पत्र वापिस भेज दिया।

सप्ताह बीतते बीतते उसे एक पार्सल वी.पी.पी. द्वारा मिला। जिसे एक हजार सात सौ पचास रुपये देकर छुड़ाना था। करीब पंद्रह सौ रुपये उसने जैसे–तैसे जोड़कर रखे थे, जिनसे वह दीपावली पर कम से कम माँ के लिए एक मध्यम दर्जे की नई साड़ी, पिता के लिए एक कमीज और बहिन की एक सलवार सूट दिलाना चाहता था, मगर अब जब उल्टे ढाई सौ रुपये कम पड़ने लगे तो वह रुआंसा हो गया। फिर उसने सोचा बहिन भाई दूज पर वह तोहफा पाकर कितनी खुश होगी तो उसने अपने एक मित्र के माध्यम से रुपये कर्ज देनेवाले से सूद पर दो हजार रुपये ले लिये। वह उसकी नौकरी के बाद पहली दीपावली पर माँ, पिता, बहन सबको उपहार देना चाहता था। अब उसने दो ट्यूशन भी पकड़ लिये थे। इसलिए वह अतिरिक्त उत्साह से भर गया था।

भाई दूज के दिन जब उसने वह पैकेट बहिन को दिया तो माँ बाबूजी और बहिन तीनों ने उसे विस्फारित आँखों से देखा। पैकेट खोलने पर एक खूबसूरत नक्काशीदार छोटा प्लास्टिक का बक्सा निकला। उसे खोलने पर उसमें एक लाल रेशम की थैली निकली, जिसमें वह सफेद रंग की चेन थी, जिसमें सलीव का पेंडेंट का था। सलीव के पेंडेंट को देखकर माँ एकदम भड़क गई, मगर जब बहिन ने चमकती आँखों से उसे बड़े स्नेह से देखते हुए माँ से कहा–माँ! भैया को क्या पता कि इसमें पेंडेंट सलीव का होगा और तुम्हें अगर एतराज है, तो मैं सलीव निकालकर चैन पहन लूँगी। अब तो ठीक है माँ, भैया का दिल छोटा न करो।' तो आज उसे बहिन की ममता का अहसास हुआ। उसका दिल खुशी से भर गया, उसने बहिन को गले से लगा लिया।

मगर भाई दूज के तीसरे ही दिन उसकी खुशी की गाज गिरी। रात को जब यह ट्यूशन देकर घर लौटा तो बहिन को बेहद खिन्न और उदास देखकर उससे कारण पूछा, तो बहिन ने बताया कि वह चेन जो उसे एक हजार छः सौ रुपये में बेची गई है, वह व्हाइट मेटल की है, जिसे पॉलिश करके चमकाया गया है और उसकी कीमत स्थानीय बाजार में व्हाइट मेटल के उत्पाद से विदेशी पर्यटकों को लुभानेवाले शोरूम पर छः–सात सौ रुपये है। बहिन की सुनकर उसे अपने मित्र का कथन याद हो आया, मगर अंग्रेजी के अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का भारी भरकम नाम और पच्चीस लाख का इनाम याद आते ही उसे लगा कि बहिन को ऐसे ही किसी ने बरगला दिया है। बी.ए. में आ गई तो क्या.... है तो अभी बच्ची ही, उमर भी क्या है उसकी ऐसी, जो समझ सके कि अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका चलनेवाली इतनी बड़ी संस्थाएँ ऐसा धोखाधड़ी का काम नहीं कर सकती।

वर्ष के अंत में उसे तीन गुणा तीन ईंच का क्रिस्टल का खूबसूरत पेपरवेट उपहारस्वरूप मिला। अगले वर्ष का ग्राहक शुल्क अग्रिम भेजने का अनुरोध पत्र भी इस उपहार के साथ संलग्न था।

वह अगले वर्ष का वार्षिक शुल्क भेजने के ऊहापोह में था कि उसे प्रबंध निदेशक की ओर से शुभ समाचार मिला, जिसमें उसे पच्चीस लाख के निश्चित इनाम का प्रथम चरण पूर्ण कर लेनेवाले भाग्यशाली प्रतिभागियों में चुने जाने पर बधाई दी गई थी।

अब उसने जैसे–तैसे करके अगले साल की वार्षिक सदस्यता के शुल्क का डिमांड ड्राफ्ट भिजवा ही दिया। डिमांड ड्राफ्ट भेजने के दो सप्ताह बाद उसे धन्यवाद ज्ञापन के साथ नये दस सदस्य बनाने के लिए प्राफार्म प्राप्त हुआ तो अबकी बार उसने भी अपने मित्र की बताई तरकीब धड़कते दिल से व्यवहार में ली और दो सप्ताह के बाद वह प्राफार्मा उसने वापिस भेज दिया।

अगले साल की वार्षिक सदस्यता शुल्क भेजने के कुछ दिन बाद अबकी बार लग्जरी कार के चित्रों की सूची प्राप्त हुई, जिनमें चार कारों के चित्र थे। पत्र के साथ दिये गये चिपनकेवाले अक्षरों के टुकड़ों से इन कारों के मॉडल के नाम बनाकर भेजने थे। दो कारों के नाम तो उसने बना लिये, शेष दो कारों के लिए उसे शहर के कारों के शोरूम के चक्कर लगाकर बनाने पड़े। मगर चारो नाम पूरे हो गये तो उसके मुँह से अचानक निकल गया–'तेरा लाख लाख शुक्र है भगवान। उसे भगवान का शुक्रिया अदा करते देख उसकी माँ को घोर आश्चर्य में पड़ गई और उसके मुँह से भी अचानक निकल गया–आज भूत के मुँह से रामराम सुन रही हूँ, भगवान तेरा लाख–लाख धन्यवाद!

इस साधारण से क्विज टेस्ट के बाद उसे पुनः एक सूची पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत सहित, पश्चिमी संगीत के दुर्लभ वाद्य यंत्रों पर ख्यातनाम कलाकारों द्वारा बनाई गई धुनों तथा गानों की सी.डी. का विवरण था और साथ ही निदेशक का वही बेहूदी भाषा में अनुरोध पत्र संलग्न था।

उसने पंडित हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरीवादन की सी.डी. पिता के लिए लेने की सोची, मगर फिर यह सोचकर कि जब घर में सी.डी. प्लेयर ही

नहीं हो तो सी.डी. का क्या होगा, दु:खी मन से इस विचार स्थगित कर दिया, मगर आर्डर तो देना ही था, इसलिए काफी सोचने के बाद उसे ध्यान आया कि प्रिंसिपल साहिबा के बारे में सहयोगी टीचर ने बताया था कि वह सुब्बा लक्ष्मी के शास्त्रीय गायन की बड़ी प्रशंसक है, इसलिए उसने सुब्बा लक्ष्मी की सी.डी. का ऑर्डर दे दिया और एक तीर से दो निशाने सधते देख वह प्रसन्न हो गया। जब पाँच सौ रुपये भुगतान के बाद वी.पी.पी. छुड़ाई तो उसका उत्साह उदासी में बदल गया।

अगले महीने उसे पच्चीस लाख के चैक की डमी भेजकर उसका चयन का प्रथम चरण पूर्ण होने की सूचना दी गई, तो वह दुगुने उत्साह से भर गया और अब छोटे–छोटे आर्डर देकर पत्रिका से सम्बद्धता बनाये रखने के लिए उसने एक ट्यूशन और पकड़ ली थी।

दूसरा वर्ष बीतते–बीतते उसे हर दो माह कुछ न कुछ करते हुए कम से कम तीन चार हजार रुपये की विभिन्न वस्तुएँ क्रय करनी पड़ी थी, जिनका उसके निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में कोई प्रयोग नहीं हो सकता था, मगर दूसरे साल के अंत में जब उसे दो डमी चैक भेजकर अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका ने पच्चीस लाख के इनाम के लाभार्थी का चयन का दूसरा चरण पूरा होने का समाचार भेजा तो वह पत्रिका के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

तीसरे वर्ष ग्राहक शुल्क उसने स्वेच्छा से ही भेज दिया। अब जब भी पत्रिका का कोई सूचीपत्र प्राप्त होता वह छोटा मोटा आर्डर दे ही देता था।

तीसरा वर्ष समाप्त होने पर उसे तीन डमी चैक प्राप्त हुए जिनमें उसके सफल प्रतिभागियों के चयन का तीसरा चरण पूरा कर लेने का संदेश था। साथ ही एक लग्जरी कार का चित्र था, जिसपर पत्र में चिपकाई गई कार की चाबी को कार के चित्र में यथास्थान चिपकाना था। लग्जरी कार को पुरस्कार के साथ जोड़ा गया था। कम से कम दस लाख की लग्जरी कार का मालिक बनना तो तय था, ऐसा आश्वासन पत्रिका की ओर से दिया गया था, मगर आजतक इस स्वीपावॉश कांटेस्ट की कोई तारीख घोषित नहीं की गई थी।

अब उसे अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका की साख पर पूरा भरोसा हो गया था। इसलिए जब इस वार पत्रिका का सूची पत्र प्राप्त हुआ तो उसने बेहद खुले दिल से डेढ़ हजार रुपये के अंग्रेजी विश्वकोष का आदेश दे दिया। हालाँकि आर्डर करते समय उसे याद आया कि कुछ समय पहले एम.बी.ए. के कुछ छात्र मार्केटिंग ट्रेनिंग के नाम पर ऐसा ही विश्वकोष आठ सौ रुपये में घर–घर घूमकर बेच रहे थे और बिकने की संभावना होने पर आठ सौ रुपये में भी पाँच छ: प्रतिशत तक कम करने का तैयार हो जाते थे। मगर इस समय आर्डर देते हुए उसे लगा कि वह अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका द्वारा प्रकाशित विश्वकोष का आर्डर दे रहा है, तो उसे अजीब सी गर्व की अनुभूति हुई।

अजब संयोग था कि उसे वी.पी.पी. प्राप्त होने की सूचना अबकी बार 7 जनवरी को ही मिली थी। वह अबतक संयोग भाग्य वगैरह में भी पूरी तरह विश्वास करने लगा था। अबकी बार माँ के यह कहने पर कि पोस्टमेन वी.पी.पी. लेकर आया था, मगर घर में एक हजार सात सौ पचास रुपये नहीं होने से वी.पी. सी. नहीं छुड़ा पाई, वह एकदम उखड़ गया। न जाने कैसे उसके मुँह से निकल गया–'क्या माँ! हर समय घर में पैसे नहीं होने का रोना रोती रहती हो। मगर उसके इस तरह भड़क उठने पर जब माँ ने उसे तरल आँखों से देखा तो वह काफी शर्मिन्दा हुआ और घर से निकल गया। दो दिन बाद वह किसी तरह पैसे का इंतजाम करके ठीक दस बजे डाकखाने पहुँच गया और संबंधित क्लर्क को सूचना पत्र दिखाकर वी.पी.पी देने को कहा।

क्लर्क उसे लेकर डाकखाने के तहखाने में उतर आया और उसने एक बड़े से संदूक खोला। क्लके के बक्सा खोलने पर उसने देखा कि एक आकार–प्रकार के कई पैकेट बक्से में भरे हुए हैं, जिसमें से उसके कोड का पैकेट निकालने के लिए वह अन्य पैकेटों को जमीन पर पटकता जा रहा था। आखिर में उसका पैकेट मिल गया, तो उसने एक बार फिर उससे रसीद लेकर उसका कोड नंबर मिलाया। अब उसे इसका इन्द्राज के लिए एक रजिस्टर की जरूरत पड़ी जो उसकी विपरीत दिशा में टेबिल पर उससे थोड़ी दूर पर रखा था। क्लर्क के एक हाथ से बक्से का ढक्कन और दूसरे हाथ से उसका पैकेट पकड़े होने के कारण उसे रजिस्टर उठा देने का अनुरोध किया। रजिस्टर उठाने के लिए जैसे ही वह पैकेट्स के ढेर को पार करने लगा, उसे उनके ऊपर उसे अंतर्राष्ट्रीय अंग्रेजी पत्रिका का नाम बड़े–बड़े अक्षरों में मुद्रित दिखाई पड़ा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। शंका समाधान के लिए वह क्लर्क से बड़ी ही बेवकूफी का सवाल कर बैठा कि क्या यह सब वी.पी.पी इसी शहर के लिए आई है?

प्रश्न सुनकर क्लर्क एकदम भन्ना गया। वह तिक्त स्वर में बोला–बाबूजी! आप पढ़े–लिखे हैं। इस डाकखाने में पूरे शहर की ही नहीं, इस महानगर के सिर्फ नॉर्थ जॉन की ही डाक आती है। सुना है कि इस पत्रिका में कोई एक करोड़ रुपये की इनामवाली कम्पीटिशन चला रखी है। सो हर दो माह में सैकड़ों वी.पी.पी. आती है। कुछ छुड़ा ली जाती है, बाकी को तीन दिन के बाद आवश्यक रूप से वापिस भेजने का अतिरिक्त काम मुझे ही करना पड़ता है, जिसके बदले में कभी–कभी कुछ पढ़–लिखे लोगों की धमकियाँ और भाषण ही मिलते हैं।

अब उसने गौर से देखा। वास्तव में सभी पैकेट उसके नाम के अंकित पैकेट जैसे थे, जिनमें प्रिंटेड बुक के लेबल के नीचे ही अंतर्राष्ट्रीय अंग्रेजी पत्रिका का नाम बड़े–बड़े अक्षरों में उसके डाक के पते के साथ प्राप्तकर्ता के उपलब्ध नहीं होने की दशा में पत्रिका को वापिस भेजने के निर्देश के साथ छपा हुआ।

यह सब देखकर वह लगभग दिग्भ्रमित हो गया, तो अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के प्रबंध निदेशक ने उसे पहले पत्र में जो लिखा था कि उस महानगर में इस स्वीपवॉश कंटेस्ट के लिए चुना जानेवाला एकमात्र भाग्यशाली व्यक्ति है, यही पत्र इस एक बड़े शहर के एक भाग में रहनेवाले इतने लोगों को मिला है। तो क्या इतनी बड़ी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के प्रबंध निदेशक का वह पत्र–उसके इंटरमीडिएट पास दोस्त के कहे मुताबिक सिर्फ मार्केटिंग का फंडा है। उसके मित्र ने उस दिन जो कहा था कि तुम ज्यादा पढ़े लिखे लोग इस मार्केटिंग के फंडे को नहीं समझोगे, वह बात एकदम सच थी?

पैकेट्स पर नजर गड़ाये हुए सोचते–सोचते उसे लगा जैसे तहखाने में भूकंप आ रहा है। उसकी दीवारें हिल रही हैं, फर्श पर प्रिंटेड बुक्स के पैकेट नहीं भूकंप में टूटी इमारत का मलवा पड़ा है। उसके पैर काँपने लगे। कानों में तेज तूफानी हवा की साँय–साँय गूँजने लगी। उसे लगा कि तहखाने की दीवारें गिर जाने से तेज हवा का झोंका आया और उसके हाथ में पकड़ा पच्चीस लाख का बियरर चेक उसके हाथ से छूटकर हवा में उड़ गया। वह चैक के पकड़ने के लिए लपका तो काँपते पैरों की वजह से लहराता किताबों के पैकेट पर ही गिर गया। गिरते समय उसका माथा वजन करने की मशीन के लोहे से प्लेटफार्म से बड़े जोर से टकरा गया। उसका माथा फट गया, खून की धार बह निकली।

अर्धचेतन अवस्था में वह सपना देख रहा था, उसकी बहिन की शादी हो रही है, वह सफेद जोधपुरी सूट और गुलाबी साफा पहने शादी की रश्म निर्वाह करवा रहा है। लाल साड़ी में लिपटी उसकी बहिन बड़ी ही सुंदर लग रही है। अचानक उसकी बहिन रोती हुई उससे लिपट गई।

बहिन की सिसकियों से उसकी आँख खुल गई। बहिन वास्तव में सिसक रही थी। मगर उसकी सिसकियाँ फेरों के बाद विदा होनेवाली बहिन की नहीं थी, वह उसके माथे पर बँधी पट्टी के ऊपर उभरते खून के निशान को देखकर उसके माथे पर हाथ रखकर रो रही थी। सर्दी से बचने के लिए उसने पुरानी लाल ऊन का हाथ से बनाया हुआ शाल लपेट रखा था।

सपने के बारे में सोचते हुए उसने बहिन की ओर देखा। बहिन को रोते देखकर उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसके सिर में दर्द की एक लहर उठी और अंग्रेजी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका द्वारा दिखाये गये 25 लाख के सुनहरे सपनों के एक झटके से टूट जाने की निर्मम चोट से उसकी चेतना फिर से लुप्त हो गयी।

कहानी

मेरे चन्दा

हरिप्रकाश राठी
कमलानेहरू नगर, जोधपुर (राजस्थान)
मो.–09414132483

जाने क्यों, एक विचित्र मायूसी इन दिनों जेहन में उतर आई है। खुदा जाने मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ है?बस, यूँ ही बात–बेबात उदास रहता हूँ। जीवन के सभी स्वाद इन दिनों फीके लगते हैं। हर कार्य में टरकाऊ अथवा 'लेटगो' की आदत बन गयी है। जीवन एक ही ढर्रे पर चलनेवाले चरखे जैसा हो गया है। वही सुबह, वही शाम। वही ऑफिस, वही आफिसवाले। वही घर, वही बीवी। वही मित्र, वही रिश्तेदार। इन सबको देखकर उकता गया हूँ। कुल मिलाकर मैं यूँ भी कह सकता हूँ कि मैं कंटाल गया हूँ। क्या मैं अवसादग्रस्त हो गया हूँ?मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब जीवन नीरस लगने लगे अथवा जीवन को निराशा घेर ले, तो समझो अवसाद धीरे–धीरे अपना साम्राज्य पसार रहा है। वे यह भी कहते हैं कि अवसादग्रस्त व्यक्ति या तो भड़काऊ बन जाता है अथवा स्वयं में सिमट जाता है एवं अगर शीघ्र नियंत्रण न किया जाए तो यही अवसाद यानी डिप्रेशन कभी–कभी पागलपन में रूपांतरित हो जाता है। तो क्या मैं थोड़े समय में पागल हो जाऊँगा?लोग जब मिलने आयेंगे तो क्या बेवजह हँसूँगा अथवा चिल्लाने लगूँगा अथवा क्या मेरे या उनके कपड़े फाड़ने लग जाऊँगा। यह भी हो सकता है कि मैं यह सब न करूँ, बस रूंठे बच्चे की तरह चुप एक कोने में दुबक जाऊँ?तब क्या लोग मुझे यह कहकर पुचकारेंगे, बच्चे! ऐसा न करो। अच्छे बच्चे जिद नहीं किया करते। यूँ विनम्र होकर जलील करने का मौका उन्हें फिर ना मिले। जिन मित्र–रिश्तेदारों को मैं जरा भी नहीं गाँठता या फिर जब–तब अपने पैनें तर्कों से उनकी बोलती बंद करता रहता हूँ, उनके लिए तो यह स्वर्णिम अवसर होगा। पागल का जो दिल में आए, कहो। वह भड़क जाए तो वे इस बीते को ढाल बनायेंगे कि पागल है एवं चुप रहे तो इस बात की कि बेचारे पर कैसी बीती है मुझे नहीं मालूम इन संगीन परिस्थितियों में मेरा क्या हश्र होगा, पर एक बात तो तय है पूजा का बैंड बज जाएगा। सारी फूँक निकल जाएगी। दिनभर आये–गयों के लिए सुबक–सुबक कर चाय बनायेगी, तब अकल आएगी। तब पता पड़ेगा पति की छोटी–मोटी सेवा करना स्वर्ग के सुखों से भी बढ़कर है। आज कल जब देखो, ऐंठी–ऐंठी रहती है, तिसपर हैकड़ी ऐसी मानो करेले पर नीम चढ़ा हो। यह करो, वह करो, तुम्हारे जैसा मरद किसी और को मिलता, तो माथा पीट लेती। तुम यह हो, वह हो, कोई का काम ढंग से नहीं करते एवं जाने क्या–क्या। यह सब भी मैं सुन लूँ, पर सब कुछ उगलकर आँखें ऐसे तरेरती हैं मानो मैं मनुष्य न होकर अजायबघर से आया जानवर हूँ। शादी के दस वर्ष बाद हर औरत मानो इस धारणा पर ठप्पा लगा देती है कि यह मरदूद कहीं नहीं जानेवाला। इससे मनमर्जी व्यवहार करो। कबूतरबाज के कबूतर की तरह आएगा तो कबूतरखाने में ही। घर के अतिरिक्त शरण कौन देगा?ऐसे में करें तो क्या करें?बस कुढ़ कुढ़कर घूटर–घूं करते रहो। मैं तो कहता हूँ एक अंतराल के पश्चात् हर बीवी बासी कढ़ी की तरह बेस्वाद हो जाती है। ढाक के तीन पात की तरह वही खान–पान, वही पहनावा, जिसे देखकर कहीं से नवीनता का अहसास नहीं होता। जो मरजी पहनो, खाओ और खिलाओ। पति की इच्छाओं, पति के मूड से इन्हें कैसी दरकार?इनके माँ–बापों ने दो पैसे दहेज में क्या चढ़ा दिये, जैसे किसी ने मोल देकर खरीद लिया हो। मैं तो बाज आया ऐसी लुगाई से। आजकल प्रेम भी ऐसे करती है, मानो कोई अहसान कर रही हो। अगरबती की तरह आगे से सुलगा देती है, बस सुलगते रहो एवं अपने अरमानों की राख झाड़ते रहो। कई बार तो ब्रह्माजी से कोफ्त हो जाती है। कुछ ढंग का नहीं बना पाये तो लुगाई बना दी एवं मढ़ दी मरद के मत्थे–यह कहकर कि जैसी–तैसी बनी तूँ ही सँभाल इसे। प्रभु! आपके पाप हमारे मत्थे क्यों मढ़ते हो। अगड़म–बगड़म आप बनाओ एवं सजा हम पायें। आपका कोई बिगाड़ भी क्या सकता है?आप तो बस मजे लो तीन मुँह में धँसी आँखों से हमारी दुर्गति देख–देखकर। इसपर भी मन न भरे तो लंबी दाढ़ी सहलाते रहना।

आज सुबह दो घड़ी देर तक क्या सो गया, पलंग केक पास चाय रखकर हिदायत दे गई, 'अब उठ भी जाओ, चाय ठंढी हो गई, तो दोबारा नहीं बनाऊँगी। यह नहीं सोचती दिनभर ऑफिस में कितना पिलते हैं। दो घड़ी सुस्ता लिया तो क्या आसमान गिर जाएगा। आज मैंने भी ठान ली है। पूजा की ऐसी–तैसी। आज मेरी मौज से उठूँगा। मैं चादर तानकर यूँ दुबका मानो कुछ सुना ही नहीं हो। लेकिन मरद की जात लुगाई से जीत सकती है क्या?कितने शस्त्र है इनके पास। पलभर दुबका ही था कि चारद शरीर से ऐसी सरकी जैसे नदी किनारे खड़े किसी अभागे का धन बह जाता है एवं वह चाहकर भी उसे नहीं रोक पाता। खैर! लंबे अनुभव से मुझे समझ में आ गया कि यह उसकी अंगुलियों का ही जौहर है।

अरे बाबा! घड़ी भर सोने भी दो'–मैं उठता–उठता बड़बड़ाया।

'सूरज चढ़ आया है। सोते ही रहोगे क्या?बाजार से सामान लाना है, अभि को स्कूल छोड़ना है एवं आते हुए एटीएम से रुपये भी तो निकलवाने हैं।' एक साँस में सब कुछ उगल गई।

इतना सुनने के बाद किसे नींद आ सकती है?मैं उठा तो सामने खड़ी पूजा मुस्कुरा रही थी। इसे मैं सपाट मुस्कुराहट तो नहीं कहूँगा, हाँ यह मुस्कुराने एवं चुप्पी के मध्यांतर जैसा था। यह मध्यांतर मुझे सदैव पहले लगता था। कभी लगता वह मुझे चुनौती दे रही तो कभी लगता चिढ़ा रही है। मैं सर खुजाने लगा। क्या वह मुझे चिढ़ा रही थी कि बताओ कौन जीता?मैं मन ही मन बुदबुदाया 'तेरा बाप जीता' एवं चुपचाप उठकर खड़ा हो गया।

अब मैं वहीं खड़े–खड़े चाय पी रहा था। पीते–पीते मैंने पूजा की ओर देखा। वह छींटवाला गाऊन पहने थी, जिसे मैंने कल रात बदलने को कहा था। उसने कुछ पल जवाब नहीं दिया तो मैंने सोचा गाऊन बदलने गयी होगी। मैं विपरीत करवट लेटा था एवं कल ऑफिस में काम इतना अधिक था कि थक भी गया था। जाने कब नींद आ गई। इसका मतलब उसने सुना भी, बात की पालना भी नहीं की और सुबह–सुबह उसी गाऊन को पहने यूँ खड़ी है, मानो ताल ठोक रही हो। दम है तो उखाड़ लो। एकबारगी तो सोचा आड़े हाथों लूँ, पर इस दुस्साहस का अर्थ था नाश्ता मनपसंद नहीं बनेगा एवं जो तीन कामों की सूची उसने पकड़वाई थी, दस में रूपांतरित हो जाएगी। मैंने चुप रहना मुनासिब समझा। यूँ चुप रहते–रहते ही तो इन दिनों उदास रहने लगा हूँ। वे कितने भाग्यशाली है, जो सारी भड़ास बीवी पर निकाल लेते हैं।

जाने क्यों, इस देश में विवाह एक आमरण बंधन है?मैं तो कहता हूँ हर पाँच वर्ष बाद वैवाहिक रिश्ते की समीक्षा होनी चाहिए?वर्ष दर वर्ष पुनर्मूल्यांकन के पैरामीटर्स कठोर होने चाहिए। तभी इन औरतों को अकल आएगी, अन्यथा औरतें दस वर्ष बाद स्वयं को उस सरकारी कर्मचारी की तरह समझने लगती है, जिसकी नौकरी खुद भी नहीं उखाड़ सकता।

मुझे याद है दस वर्ष पूर्व हमारा विवाह हुआ, तब कैसे छिप–छिपकर मिलते थे। पूजा जब कितनी सुंदर लगती थीं, सुंदर तो वह अब भी है, लेकिन तब रूप को सहस्रगुना निखारती। उसका पहनावा, बोलने का तरीका देखते ही

बनता था। आँखों की कोरों में काजल की पतली रेख होती, पलकों पर आई शेडो, कानों में खूबसूरत बूँदें, नाक पर चमकती नोजपीन, गले में हार सभी दिलकश होते। कैसी दिलफरेब अदायें थीं। इसी रूप एवं हावभाव पर तो मर मिटा था। अब न जाने वो हाव–भाव कहाँ गये?पहले वह कलकल बहती नदी की तरह निश्चल लगती थी, अब तो मानो पानी ठहर गया है। मैं ऑफिस की औरतों से उसकी तुलना करता हूँ तो तिलमिला उठता हूँ। सभी कैसे सज–धजकर सुंदर कपड़ों में आती है। विवाह के कई वर्ष पश्चात् भी कितनी युवा लगती है। इतना ही नहीं घर जाकर गृहस्थी की कमान भी संभालती है। पूजा को समझाने का प्रयास करता हूँ तो उल्टे पड़ती है। खूब जानती हूँ, इन वर्किंग लेडीज को। सबके घर नौकर होते हैं, बच्चे बोर्डिंग में पलते हैं। करना क्या है इनको?घर पति के वेतन से चल जाता है। इनकी तनख्वाहें तो मेकअप के लिए है। बच्चे भले इनके क्रेच में सड़े, उन अबोधों के मुँह पर मक्खियाँ मँडराती रहे अथवा बोटली से दूध आया पी जाए। इनकी बला से। बस सज–धजकर ऑफिस जाना है और यह महारानियाँ रूप शृंगार निखारे भी क्यों नहीं, वहाँ आप जैसी रीझनेवाले जो बैठे हैं। औरत देखते ही लार टपकानेवाले।

इन दिनों पूजा को एक कहो तो दस उत्तर देती है। जाने क्यों एक विचित्र नकारात्मक उसकी खोपड़ी में उतर आई है। खैर! मैं भी क्या सोचने लगा। मैं उठकर तैयार हुआ। नित्य की तरह छत पर आकर वर्जिश करने लगा, तबतक सूर्य ऊपर उठ आया था। मैंने क्षणभर सूर्य की ओर देखा एवं अकारण कुढ़ गया। अनेक बार मुझे प्रकृति एवं परमात्मा तक से कोफ्त हो आती है। रोज वही लाल–पीला सूरज। मैं तो कहता हूँ–सूरज भी नित नये रंग का होना चाहिए। कभी लाल, कभी आसमानी, कभी पीला तो कभी सफेद। तब देखने का मजा आएगा। सूरज के बदलते रंगों के साथ पेड़–पौधों, वनस्पतियों का भी रंग बदलेगा। इतना ही नहीं आदमी एवं जानवर भी बहुरंगी देखने को मिलेंगे। परमात्मा भी लगता है कोई मोनोटोनस बोर एवं नीरस तत्व है। वर्षों, सदियों एक–सा। आज मौसम में उमस थी, कई दिनों से बारिश होने को थी, पर हुई नहीं थी। यह उमस मुझे भी तंग करने लगी थी। मैं नीचे आया तो अभि तैयार था। मैंने मोर्चा सँभाला। उसे स्कूल छोड़कर आया, रुपये एवं किराना पूजा को थमाये, तबतक नौ बज चुके थे। अब मुझे ऑफिस पहुँचने की चिंता होने लगी। नित्य वहाँ दस बजे पहुँचना होता था। बीस मिनट तो पहुँचते–पहुँचते लग जाते हैं। मैं आनन–फानन तैयार हुआ एवं डाइनिंग टेबल से कुर्सी निकालकर बैठ गया। पूजा ने आकर नाश्ते की प्लेट रखी तो सर पकड़ लिया। सुबह–सुबह मूड उखड़ गया। फिर वही पौहे। पिछले जन्म में इसके पौहों की दुकान होगी?हमारे यहाँ महीने में पंद्रह दिन पौहे तय है। हजार बार कह चुका हूँ–कभी हलुआ, कभी सिंवइयाँ, कभी पिज्जा आदि बनाया करो, पर सुनता कौन है?

मैंने नाश्ता ठूँसा, जल्दी–जल्दी बाहर आया एवं ऑफिस की राह ली। ऑफिस में भी इन दिनों दिल नहीं लगता। अब तो जरूरी काम है, उन्हें तो निपटाना ही पड़ता है, हाँ, चलाकर ऐसा कोई उपाय नहीं करता कि कुछ चैलेंजिंग एवं नये तरीके से करूँ। मैंने काम करके देख लिया कोई तमगा नहीं मिलनेवाला, वरन कई बार उल्टा हो जाता है यानी जो करता है, उसपर लादते चलो जाओ का सिद्धांत चलता है। जैसे वह कोई गधा अथवा ऊँट हो। इस देश में काम करनेवाले का यही हश्र होता है। सरकारी कार्यालयों में तो योग्यता अनेक बार अयोग्यता बन जाती है। अन्य भी फिर आपको ऐसे देखते हैं, जैसे आप उनकी राह का रोड़ हो। यहाँ कोई बैठने–उठने, बात करने का सलीका तक नहीं जानता। चाहे जैसे जवाब दो, चाहे जो पहनकर आओ। जिसकी जो मर्जी है, पहनकर चला आता है। मैं तो कहता हूँ–हर सरकारी विभाग में ड्रेस कोड होना चाहिए, ताकि ऑफिस, ऑफिस लगे। अन्यथा कोई पैंट पहनकर आ रहा है तो कोई लूँगी में, कोई तिलक–छापा लगाकर आता है तो कोई कैप–पगड़ी में। यह ऑफिस है या ससुराल जहाँ जमाई की तरह अपनी मौज में रहो। पहले तो मैं सहकर्मियों को इन सब बातों पर टोकता था, पर एक बार सभी लामबंद होकर मुझपर चढ़ गए। तबसे मैंने भी मौन धारण कर लिया है। मेरी बला से। खैर, पाँच बजा चाहते हैं। मैंने अपनी ड्रावर बंद की, काम समेटा और सर्र से बाहर निकल आया।

शाम घर आकर कुछ देर पूजा एवं बबलू के साथ रहा। कुछ देर टीवी देखा तो आठ बज गये। मेरे डीनर लेने का यही समय है। डीनर लेकर मैं इवनिंग वाक के लिए बाहर आया। मैं इवनिंग वाक माथुर साहब के साथ करता हूँ, जो घर से दस कदम दूर तीसरे मकान में रहते हैं। हमारी कॉलोनी में सभी घरों के सामने एक गोल पार्क है, उसी का चक्कर लगाते हैं।

आज पहला चक्कर आधा पूरा किया होगा कि चक्रवर्ती के घर एक नया किरायेदार दिखा। किरायेदार क्या किरायेदार थी, जो घर में प्रविष्ट हो रही थी। चक्रवर्ती तो यहाँ रहता नहीं। उसकी पोस्टिंग अन्यत्र होती रहती है, अत: अक्सर यहाँ नये किरायेदार आते रहते हैं।

माथुर साहब ने मेरी ओर देखा और अर्थपूर्ण अंदाज में मुस्कुराये। उनकी दबी हँसी देखकर मुझे पाँच वर्ष पहले इसी घर में आई एक अन्य किरायेदारनी की याद हो आई। जब–जब भी इस घर में नया किरायेदार आता है, मैं ही पहलकर मिलता हूँ। सबको मालूम है श्रीवास्तव सीधा आदमी है, इस कार्य के लिए सही व्यक्ति है। पाँच वर्ष पूर्व आई, उस किरायेदारनी से मिलने पहले मैं ही गया था। धीरे–धीरे हमारे रिश्तों में रंगत चढ़ने लगी थी, पर माथुर बाजी मार गया। बाद में वह इसकी अंग्रेजी पर ऐसी फिदा हुई कि उसने मुझसे किनारा किया एवं इसकी मित्र बन गई। मैंने भी कम पापड़ नहीं बेले थे। एक दिन गुपचुप श्रीमती माथुर से जाकर शिकायत की, तो माथुर की अच्छी परेड हुई। उसकी बीवी ने कमसिन किरायेदारनी को सरे मोहल्ले लताड़ा। कुछ समय पश्चात् उसका स्थानांतरण अन्य शहर में हुआ तो वह भी यहाँ से चली गई। माथुर की दुर्गति देखकर मैं मन–ही–मन प्रमुदित हुआ। डेढ़ होशियार को उसका फल तो मिलना ही चाहिए। भाभी ने भी यह भेद कि यह बात मैंने उसे बतायी थी, पचा लिया, बरना माथुर मुझे छोड़ता क्या?

खैर, इस बार यह गलती नहीं दोहरानेवाला। मुझे मालूम है माथुर पहलकर उससे मिलेगा नहीं। इतना दम कहाँ है उसमें। उसे तो पकी खिचड़ी चाहिए। बस पटर–पटर अंग्रेजी बुलवा लो। यह कार्य तो इस बार भी मुझे ही करना होगा, लेकिन इस बार तय है कि बीज मैंने बोये तो फल भी मैं ही चखूँगा। माथुर को मिलेगा ठेंगा। मैं प्रारंभ से ही पाल बाँधूँगा कि बगले झाँकते फिरेगा। वैसे भी इन दिनों पूजा ने परेशान कर रखा है। मैं स्वयं चाहता हूँ पहलकर महिला मित्र बनाऊँ, जिसे मन की बात कह सकूँ। बस अन्य स्त्रियों से मेरा इतना भर प्रयोजन है। इससे आगे मैं बढ़नेवाला नहीं। पूजा का भरोसा थोड़ा ही है, हो सकता है अपने माँ–बाप अथवा मेरे पाप–मम्मी को शिकायत कर दे। यह भी हो सकता है कि वह थाने में प्रताड़ना का केस दर्ज करवा दें। इस बात की भी पूरी संभावना है कि आत्महत्या का प्रयास करे। मेरे ऑफिस में शिकायत भी कर सकती है। पूजा कुछ भी कर सकती है, उसकी खोपड़ी बिगड़ती है, तो आगा–पीछा कुछ नहीं सोचती। इन दिनों उसके तेवर देखकर सोचता हूँ, उसे सबक अवश्य मिलना चाहिए।

दूसरे दिन इवनिंग वाक के लिए मैं थोड़ी देर से निकला। माथुर के यहाँ आवाज दी तो भाभी बाहर आकर बोली इन्हें वायरल फीवर है, तीन–चार दिन वॉक नहीं कर सकेंगे। मेरे मन में अंगूर के दाने बिखर गए। मन ही मन दुआ की कि दस दिन ऐसे ही पड़ा रह, तबतक मैं मोर्चा मार लूँगा।

मैंने आधा सर्कल पूरा ही किया था कि नई किरायेदारनी दिखाई दी। बाहर बगीचे में खड़ी पौधों को पानी पिला रही थी। ओह! वह कितनी सुंदर थी।

लंबा कद, सुंदर आँखें, गोरा रंग, तिसपर सुंदर दंतपंक्ति। वह तकरीबन पैंतीस की होगी। मैंने उसे एक बार पुनः गौर से देखा। हम–वय सुंदर स्त्री को देखना कितना अच्छा लगता है। लगा जैसे कॉलोनी के आकाश पर चाँद उग आया हो। मैं रुका एवं पहलकर वार्ता प्रारंभ की।

आप इस कॉलोनी में नयी आई हैं?

हाँ, कल ही तो आई हूँ। कहते–कहते उसकी श्वेत दंतपंक्ति मोतियों–सी बिखर गई।

मैं सामनेवाला मकान में रहता हूँ। मेरा नाम मनन श्रीवास्तव है, मेरे लायक कार्य हो तो अवश्य बतायें।

ओह स्योर! लेकिन आप बाहर क्यों खड़े हैं। आइये भी। आपके साथ चाय पीते हैं। मैं फिराक में था, ऐसे भीतर आया कि कहीं वह विचार न बदल लें।

आप आज जल्दी आ गई? कल तो आप इस समय ऑफिस से आई थी। कहते–कहते मेरे मुँह में मिश्री घुल गई।

हाँ, आज मेरा कार्य जल्दी समाप्त हो गया, अतः जल्दी चली आई। कभी–कभी ऑफिस से समय पूर्व आने का अलग आनंद है। इतना कहकर वह खुलकर हँसी, तो मैं समझ गया कि मरदों से वार्ता करने में उसे कोई झिझक नहीं है।

हम दोनों अब ड्राईंग रूम में चाय पी रहे थे। बातों ही बातों में उसने बताया कि उसका नाम मंजुरी है एवं वह एक चिरकुँआरी है। कुछ पारिवारिक कारणों से उसने अविवाहित रहने का निर्णय लिया है। उसने यह भी बताया कि वह स्थानीय कॉलेज के समाजशास्त्र विभाग में मनोवैज्ञानिक है। उसने कॉलानी के बारे में एवं कॉलोनीवालों के बारे में भी मुझसे परिचय लिया। मैंने सबके लिए अच्छा ही कहा, पर जब उसने पूछा कि कल आप किसके साथ घूम रहे थे?तो मैंने कहा कि वह मेरा पड़ोसी माथुर है। वैसे इंसान तो अच्छा है, पर कुछ लफाड़ी किस्म का है।

ओह! मैं ऐसे लोगों को जूती पर रखती हूँ। कम–से–कम उन्हें मुझसे दूर ही रखें। मंजुरी का उत्तर सुनकर मैं मन–ही–मन ढोल बजाने लगा।

धीरे–धीरे हमारा परिचय मित्रता में तब्दील हो गया। उसने अपनी सीमा रेखाओं से मुझे प्रथम दिन ही अवगत करवा दिया था। मैं उसके अनेक छोटे–मोटे कार्य भी करने लगा। पूजा ने एक–दो बार मुझे कहा भी कि आजकल सामनेवाली किरायेदारनी के यहाँ बहुत जाते हो। जी में तो आया, उसे जवाब दूँ–जाऊँ नहीं तो क्या करूँ, तूने जीने लायक रखा है क्या?पर उसका स्वभाव जानकर चुप्पी मार गया। मेरी चुप्पी से उसका संदेह गहरा गया। मुझे मालूम है औरतों में ईर्ष्या गहरे से पैठी होती है। शायद इसी बहाने उसे अकल आ जाए।

आज रोज मैं पुनः मंजुरी के साथ था। अबतक हम दोनों बेतकल्लुफ थे। आज जैसा कि इन दिनों चल रहा था, मेरा मूड उखड़ा–उखड़ा था। मुझे यूँ देखकर मंजुरी बोल, क्या बात है?मैं देखती हूँ कभी–कभी आप एक विचित्र उदासी में खो जाते हो। मेरे बिना कहे ही मेरे मन का भेद उसे प्रकट हो गया। आज मैंने साहस कर अपनी उदासी का कारण उसे कह दिया कि मैं पूजा के व्यवहार से बहुत दुःखी हूँ। हर बात पर जवाब देती है। पहले तो ऐसा नहीं था। मेरी बात सुनकर मंजुरी ने यूँ अट्टहास किया, मानो सब कुछ समझ गई हो।

आपकी शादी को कितने वर्ष हो गये?उसने एक कुशल मनोविद् की तरह प्रश्न दागा।

दस वर्ष! लेकिन इन दिनों पूजा सर चढ़ गई है। न बात करने का सलीका न ढंग का पहनावा, न ही कोई रूप–शृंगार। देखती ऐसे है मानो मैं पति न होकर जंग लगा लोहा हूँ। वह बदलने को तैयार ही नहीं है। आप मनोवैज्ञानिक हैं, आप ही बतायें मैं क्या करूँ?

वैवाहिक जीवन में एक अंतराल के पश्चात् ऐसा होता है। आप उसके भीतर प्रतिस्पर्धा पैदा करें, ईर्ष्या जगायें। उसे कभी–कभी अहसास करवायें कि आप फिसल सकते हैं, यह अपरिहार्य नहीं है।

मतलब! मैं अधीर होकर बोला।

इस बार मंजुरी चुप रही। कुछ क्षण के बाद वह पुनः मुस्कुराई एवं बोली–आप निश्चिन्त रहें, इसका इलाज मैं कर दूँगी। आप दोनों में पुनः पहले जैसा, वरन इससे भी अधिक प्रेम होगा। उसके बाद मेरे कान के समीप आकर अपनी योजना समझाई। तो क्या आप सचमुच कल हमारे घर आ रही हैं। आश्चर्य पुलकित मैंने मंजुरी की ओर देखा।

बिल्कुल! अपनी बीवी से नहीं मिलाओगे?वह मुस्कुराई।

जरूर! मैंने निमंत्रण देते हुए कहा।

दूसरे दिन वह हमारे घर आई। मैंने बेतकल्लुफ आगे आकर उससे हाथ मिलाया। इतना ही नहीं, मैं लपककर बढ़ा एवं उसे बाहों में भर लिया। मैं एक मिनट उसका हाथ पकड़े यूँ खड़ा रहा, मानो वह मेरी अंतरंग सखी हो। हम दोनों में पहले से साँठ–गाँठ तो थी ही। मैंने पूजा से उसका परिचय करवाया। लेकिन वह सुन कहाँ रही थी। उसे तो साँप सूँघ गया था। जब तक मंजुरी घर में रही, वह हाँ–हूँ करती रही।

रात मैंने जमकर मंजुरी की तारीफ की। पूजा का चेहरा ऐसा था, जैसे किसी हरे पेड़ पर बिजली गिर गयी हो। आश्चर्य! दूसरे दिन से उसके व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन हुए। मंजुरी की योजना रामवाण सिद्ध हुई। अब उसका व्यवहार मृदु दर मृदु होने लगा। वह अच्छे कपड़े पहनने लगी। इतना ही नहीं, जब–तब रूप निखारने का प्रयास करती रहती। अब मेरी पसंद की डिशेज भी बनने लगी। वह एकाएक सजग हो गई। रूप में कजरा–गजरा सब जुड़ गये। खोने के भय ने पाने के समस्त समीकरण पुनर्जीवित कर दिये। मैं भी उसके लिए नित नये उपहार लाने लगा। लेकिन अब वह मंजुरी से न मिलने का दबाव भी डालने लगी। यहाँ तक कि एक बार तो धमकी दे डाली कि आगे अगर मैं उससे मिला तो वह पीहर चली जाएगी। मुझे उसका यूँ कहना बहुत भला लगा। मैंने उसे छेड़ते हुए कहा–'भले तुम नाराज हो जाओ, मंजुरी तो मंजुरी है।' मेरे इतना कहते ही आग लग गई। मैंने देखा वह एकाएक आशंकित हो गई है।

इन दिनों, कई दिनों से मैं मंजुरी के यहाँ नहीं गया तो पूजा आश्वत रही।

आज सुबह–सुबह मंजुरी हमारे घर आई तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने बढ़कर उसे गले लगाया। पूजा ने उसे ऐसे देखा, जैसे कच्चा खा जाएगी। मंजुरी ने अपना पर्स टेबल पर रखा एवं कुछ वस्तुएँ निकालने लगीं। मैंने गौर से देखा, अरे! यह तो राखी थी। मैं कुछ कहता, उसके पहले ही वह बोली–श्रीवास्तव साहब! मेरे कोई भाई नहीं है एवं सच माने इस दुनिया को देखकर कभी भाई बनाने की इच्छा भी नहीं हुई, लेकिन आपने मेरा दिल जीत लिया है। क्या मैं आपको राखी बाँध सकती हूँ?

मेरी भी कोई बहन नहीं थी। बचपन से अन्यों की कलाई में राखियाँ देखता था तो मन में एक विचित्र टीस उठती।

मैंने अपनी कलाई बढ़ाई। राखी बँधवाते हुए हम दोनों की आँखें गीली थीं।

मेरी पेशानी चूमते हुए हर्षगद्गद मंजुरी बोली–मेरे चंदा! मैंने चंदा की ओर देखा।

हमसे अधिक प्रेमाश्रु अब उसकी आँखों से बह रहे थे। उसे आज एक प्यारी–सी ननद जो मिली थी।

कहानी

शाहजी

डॉ. रजनीकान्त
राजविला, लोअर कैथू
शिमला–3 (हिप्र0)
मो0–09418344159

यह उन दिनों की बात है, जब मेरे पिताजी अमृतसर से स्थानांतरित होकर हिमाचल प्रदेश में ऊना जिला के भँजाल गाँव में आकर बस गये थे। मेरे पिताश्री अध्यापन व्यवसाय में थे। मैं बताता चलूँ कि भँजाल गाँव सुंकाली और अमलैहड़ के मध्य स्थित है। भँजाल गाँव के बिल्कुल साथ लगता अमलैहड़ गाँव है, जहाँ पर रुद्रु बाबा का प्रसिद्ध डेरा है। स्कूल के दूसरी छोर पर नकडोह गाँव की सीमा प्रारंभ होती है। यह स्कूल संकाली की सीमा पर स्थित है। इसके दूसरी छोर पर भँजाल की सीमा शुरू होती है और यह मुबारिकपुर तक विस्तारित है। कोई पाँच किलोमीटर की दूर पर मुबारिकपुर स्थित है। यहीं से होशियारपुर अथवा ऊना, हमीरपुर और ज्वालाजी के लिए बसें ली जा सकती हैं।

हमने सुंकाली में किराये पर मकान ले लिया। मालिक मकान भी हमारे ननिहाल के गाँव से थे। हमारे पास दो कमरे थे। आँगन पार करके रसोई का प्रावधान था। रसोई के साथ बिल्कुल साथ लगता सार्वजनिक मार्ग है। इस मार्ग पर आगे जाकर दायीं ओर एक मंदिर है। मंदिर मार्ग आगे जाकर खड्ड के दूसरी ओर एक घराट है। घराट के बिल्कुल साथ कुआँ है। कुएँ के साथ एक बड़ा–सा छायादार बहुत पुराना पीपल का वृक्ष है। इसी खड्ड में आगे जाकर क्रम से कम–से–कम तीन–चार घराट स्थित हैं।

हमारी रसोई के साथ लगते बड़े–बड़े सेमल के वृक्ष हैं। हमारा सभी पड़ोसियों से परिचय हुआ। हमारी रसोई से कोई पचास कदम पर तुलसीराम शाह का घर था। घर में शाहजी और उनकी माँ दो जने रहते थे। शाहजी की माँ को मुहल्ले के सभी लोग शाहनी कहकर पुकारते थें सुना है कि शाहजी की पत्नी भी पहले–पहल उनके साथ रहती थी, लेकिन दोनों में नहीं निभी। कई कहते हैं कि सास–बहु में नहीं बनी। एक दिन शाहजी और उनकी पत्नी होशियारपुर कुछ सामान खरीदने गये। रास्ते में किसी बात को लेकर दोनों में कहा–सुनी हो गयी। बात यहाँ तक बढ़ी कि शाहजी की पत्नी ने अपनी सुहाग चूड़ियाँ गगरेट के पास स्वां नदी में बहा दीं। कसम खाई कि मैं आज के बाद आपके साथ नहीं रहूँगी। मेरा और आपका रिश्ता खत्म। आप मेरे लिए मर गये और मैं आपके लिए। और उसने अपना वादा मरते दम तक निभाया। शाह की पत्नी ने सुंकाली में कभी कदम तक नहीं रखा। उस दिन शाह अकेला घर पहुँचा। शाहनी माँ ने शाह को बुरा–भला कहा और उसे बहु लाने के लिए कहा। शाह बेचारा गया जरूर। मगर शाहजी की पत्नी तो और ही किसी मिट्टी की बनी थी, उसने साफ इंकार कर दिया कि वह कभी अपने ससुराल में कदम नहीं रखेगी। पत्नी की जिद्द के आगे शाह को हार माननी पड़ी। शाह की पत्नी को नहीं आना था, वह वापिस नहीं आई।

शाहजी का घर दोमंजिला था। मकान के बिल्कुल दायीं छोर पर एक ओर गोहरण (पशुशाला) जरूर बनाई गई, लेकिन किसी मालपशु रखने की उन्होंने जेहमत कभी नहीं उठाई। मकान की छत के ऊपर स्लेट डाले गये थे। उपरली मंजिल पर बड़े–बड़े तीन कमरों में बड़े–बड़े सगले, पीतल के बर्तन, बटलोहियाँ, पीतल के बड़ी–बड़ी गागरें, लोहे की कड़ाहियाँ,पीतल की कड़ाहियाँ, पीतल की परातें रखी हुई थीं। उन कमरों में दो–दो लोहे के बड़े ताले जड़ दिये गये थे। जब कभी लोगों को शादियोंमें इन चीजों की जरूर पड़ती, तभी ये चीजें बाहर निकलतीं। शाहजी बर्तन ले जानेवालों को ताकीद कर देते कि बर्तन वापस करते समय बर्तनों में मुँह लिश्कता हुआ दिखना चाहिए। नहीं तो यहीं बैठकर तुम लोगों से बर्तन मँजवाऊँगा। शाहजी और उनकी माँ शाहनी एक नंबर के कंजूस थे। चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाए, वे इस सिद्धांत पर विश्वास रखते थे।

शाहजी का कद पाँच फुट पाँच अथवा छः ईंच रहा होगा। बाल बिल्कुल सफेद चाँदी–जैसे हो चुके थे। आप उन्हें सिंगल हड्डी का कह सकते हैं। बिल्कुल सींकिया पहलवान, मरियल। उन्हें लोग छेड़ते–शाहजी! सच बताना, कमर तो आपकी है नहीं, फिर नाड़ा कहाँ बाँधते हो?कोई शेर के माध्य से छेड़ देता। सुना है कि उनकी कमर ही नहीं, न जाने वो कहाँ बाँधते हैं?तुलसी शाह मात्र उत्तर में खीसें निपोर देते।

सुंकाली में अधिकांश घर ब्राह्मणों के हैं, किन्तु एक धर स्वर्णकारों का भी है। इसके साथ हमारे मधुर संबंध थे। उस समय हमारे घर चूल्हा जलता था। हम बच्चे लकड़ियाँ लेकर चूल्हे के पास रख देते। कभी कभार भूपने की मदद से आग जलाने में माँ की सहायता भी कर दिया करते थे। माँ चूल्हे की गर्मागर्म सिंकती रोटियाँ खाने को देती। मक्की की रोटी के हम खूब शौकीन थे। हमारी नानी ने माँ के लिए उपहारस्वरूप एक भैंस ननिहाल से भेज दी थी। कुंडे सींगोंवाली काले रंग की भैंस। रसाई के बिल्कुल सामने खुली जगह पर भैंस के लिए एक अस्थायी गोहरन बना दी गई। चारों ओर मेंहदड़ (ख़ास किस्म का घास) का बाड़ लगाकर उसके अंदर घासफूस भर दिया गया, ताकि सर्दियों में इस निरीह पशु को सर्दी न लगे। सर्दियों में भैंस के लिए यह उपयुक्त जगह थी। माँ समय–समय पर हम बच्चों को निर्देश देकर घास डलवाती रहती। पानी पिलाने के लिए अलग से बड़ी बाल्टी और तसला गोहरण में ही रखवा दिया गया था।

हमारा चूल्हा सारा दिन जलता रहता। माँ चूल्हे में उपले डाल देती। उपले जलते रहते। इससे चूल्हे में कभी धुआँ भी रहता, गोहटु सुलगता रहता। जब भी आग की आवश्यकता हो, उपले से लकड़ियाँ जल उठतीं। चूल्हे के पिछले भाग (पचोले) दधुनु में पानी उबलता रहता। शाहनी हमारे यहाँ से कड़छी में आग ले जाती। अधिकांश लोग चूल्हा जलाते। वैसे हमारे पास पीतल का स्टोव भी था। मिट्टी के तेल से स्टोव जलता। फर्न–फर्न की आवाज होती। हम बच्चों को इसी आवाज बड़ी भली लगती। कई बार नहाने के लिए पानी गर्म करना होता तो बाहर खुली जगह पर दो ईंटें रखकर आग जला दी जाती। इसपर दधुनु रखकर पानी गर्म कर लिया जाता। पानी लेने के लिए हमें खड्ड में स्थित बावली पर जाना पड़ता अथवा कुएँ से लाना पड़ता। दूध–दही घर में हो तो सब्जी का कोई ज्यादा झंझट नहीं होता। कढ़ी बना लो, दही में पकौड़ियाँ डाल दो, लस्सी अथवा दही को बिलोकर पलदा अथवा रेहडू बना लो। हींग लगे न फटकड़ी रंग भी चोखा हो जाए।

शाहनी दूसरे तीसरे दिन लस्सी माँगने हमारे घर आ धमकती। माँगने में उसका कोई सानी न था। हम उसके मुँह बनाने की अदा से पहचान लेते, अब किसी चीज की माँग रख दी जाएगी। कोई न कोई चीज उनके घर खतम हुई रहतीं कभी चीनी के लिए कटोरी लेकर आ जाती, कभी नमक की माँग करती। कोई न कोई माँग जरूर सरक जाती। लोगों से पता चला कि तुलसी शाह का एक बड़ा भाई दिल्ली सचिवालय में ऊँचे ओहदे पर तैनात है। उसके कोई लड़का नहीं है, दो बेटियाँ हैं। शाहजी का भाई बहुत कम गाँव में आता। मुझे नहीं लगता, हमने कभी उसे यहाँ आते देखा हो। पर तुलसी शाह अपने भाई की प्रशंसा अथवा जिक्र अवश्य करता। तुलसी शाह दिन में पाँच चक्कर सुंकाली बाजार में लगा आता। तुलसी शाह अक्सर ताराचंद हलवाई के यहाँ बैठा रहता। तुलसी शाह पाँच जमात पढ़ा था। वह वहाँ रखी अखबार वाँचता रहता। आराम से उसके दो घंटे यहीं पास हो जाते। कभी तारा हलवाई उसे चाय पीने को दे देता। चाय का वह बड़ा शौकीन था। आँख झपकते ही चाय का प्याला खाली कर देता। गर्म–गर्म चाय पीने में उसका कोई सांई न था। कभी कभार दुकान में मौजूद ग्राहकों में शर्त लग जाती कि कौन व्यक्ति सबसे पहले चाय का कप खाली कर सकता है। तुलसी शर्त जीत जाता। शर्त लगानेवाले को मुफ्त चाय पिलानी पड़ती। मुफ्त की

चाय कितनी भी मिल जाय छोड़ता नहीं था। कहने को वह शाह था, घर में वह कमर में परना जैसा बाँधे रखता जो पीछे से बिल्कुल फटा होता। हाँ, बाजार जाते समय पायजामा पहन लेता, जो बिल्कुल मैला चीकट होता।

गाँव में जहाँ कोई फंक्शन, शादी–ब्याह अथवा भंडारा चला रहता। शाह को इसका पता चलना चाहिए, वह सबसे पहले पहुँच जाता। वापसी में वह अपनी माँ के लिए परोसा परने में बाँधकर ले आता। इससे शाम का जुगाड़ भी हो जाता। तुलसी शाह की माँ शाहनी कृशकाय थी। आयु रही होगी पचहत्तर के पार। धीरे–धीरे पुरानी चमड़े की पणिया (चप्पल) घिसटती हुई चली रहती। उसके आने पर हम सभी को आभास हो जाता, पीठ पीछे सभी कहते छुप जाओ, आफत आ गई। शाहनी का नाम ही आफत माई पड़ गया था। घर का तो वैसे ही कुदयाड़ा था। औरत के रूप में बहू ही घर को सँवारती है। यहाँ तो उनके घर में सब अस्त–व्यस्त पड़ा रहता। अब ये दोनों प्राणी जैसे समय काट रहे थे। या अपनी जून अथवा कजून काट रहे थे। लोग पीठ पीछे कहते–मालिक का दिया हुआ सब कुछ है, लेकिन इन दोनों माँ बेटे को खाने की आज्ञा नहीं है। वाह ठाकरा! तेरे रंग न्यारे हैं। जिनके पास पैसा है, उनको खाने का हुक्म नहीं और जिनके पास साधन नहीं, वे दाने–दाने को मुहताज हैं।

तुलसी शाह के पिता लोगों का ब्याज पर कर्ज देते थे। अष्टाम पर बदले में गहना अथवा जमीन रैहण लिखवा लेते। कहते हैं कि शाह के घर के बाहर तड़के ही कर्जा लेनेवालों की लाइनें लगनी शुरू हो जाती थीं। बड़े शाह की मृत्यु उपरांत कोई ऋणी पैसा देने नहीं आया। लोग बताते हैं कि तुलसी शाह के पास मलकां के दुर्लभ सिक्कों का खजाना है। कोई बताता–शाह के पास सोने की ईंटें हैं। पर शाह और माँ शाहनी के रहन–सहन से पता नहीं चल पाता था कि वे सचमुच के शाह होंगे। शाह की माँ के कपड़ों पर पैबंद लगे होते। पर उसका सिर दुपट्टे से अवश्य ढका होता। एक ही सूट में माँ शाहनी पंद्रह दिन निकाल देती और महीने के बाद सभी कपड़े लेकर खड्ड में जाकर धोने लग जाती। साबुन के नाम पर गोलू की मिट्टी अथवा चूल्हे की राख से कपड़े साफ करती। तुलसी शाह की कंजूसी के किस्से पूरे गाँव में प्रसिद्ध थे।

माँ शाहनी जैसे–तैसे शाह का भरण–पोषण कर रही थी। औरतें कहतीं कि शाहनी की आँख बंद होते ही तुलसी शाह कैसे जी पाएगा?लोगों से माँग–माँग कर शाहनी सब्जी ले आती। तुलसी शाह सबेरे एक गागर भरकर पानी ले आता। उसका गुजारा पूरे दिन के लिए हो जाता। तुलसी शाह की जमीन के नाम पर दो खेत थे। वह भी बिल्कुल रास्ते के साथ लगते हुए। छोटे–छोटे खेतों के लिए बैलवाला कोई जमीन जोतने को तैयार नहीं होता था।

कोई पुराना ऋणी टकर जाता, तो तुलसी शाह शेर हो जाता। ओये परीतमा, तेरे लगदे बब्ब एह खेत कुणी वाहने। चल मेरे कन्ने। हाण तां मैं नई छड्डणा। तैं हाण मेते नीं बचना। हुन मैं दिखदा तू मेरा कम्म कियां नी करा। (ओ प्रीतम! तेरे पिताश्री लगते खेत कौन बोयेगा, मेरे साथ चल, अब तैं तुझे नहीं छोड़ूँगा। तू मुझसे बचकर कहाँ जाएगा?मैं भी देखता हूँ कि तू मेरा काम कैसे नहीं करेगा?शरमो–शर्मी उसके दोनों खेत जोत जाता। दोनों माँ बेटे के खाने लायक अन्न पैदा हो जाता। घराट से आटा खुद शाह पिसाकर ले आता।

तुलसी शाह और उसकी माँ तो जून भुगतने ही इस धरती पर आये हैं। पुरखों की इतनी जायदाद है कि बेचकर खाते रहे, तब भी यह खतम न हो। पर इन बेचारों को खाने का हुक्म नहीं। लगता है शाह की जायदाद पर तो किसी और का ही नाम लिखा है। पैसे के होते हुए भी जो आदमी दर–बदर भटकता रहे, माँगता रहे, उसका तो बेली ही बारिस है, लोग पीठ पीछे जरूर कहते।

शाह की गाँठ में अब भी पैसा है। कई बार पार के गाँव खरयाली, सिद्ध, चलेहड़, भँजाल और नकहोड़ से लोग ऋण लेने शाह के पास सुबह डेरा लगा लेते। कहते हैं कि तुलसी शाह उनसे चक्रवृद्धि ब्याज वसुलता है। अनपढ़ लोगों से अंगूठा लगवा लेता है। किसी की जमीन लिखवा लेता, तो किसी के गहने रैहन रखा लेता है। निर्धारित तिथि को खुद धमक जाता है।

ओये मंगू निकाल मेरे पैसे ब्याज समेत। आज तो मनयाद खत्म हो गई। शाहजी! बस मेरे लड़के के ढऊये भेजने थे। बीमार हो गया बेचारा। शाहजी! आप तो जानते हैं बीमारी तो किसी को पूछकर नहीं आती। अगल हफ्ते वह पैसे भेज रहा है। मेरे मालका! मैं खुद औणा तेरे बहाल पैसे लई करी।

लत्तां बड़ी देनियाँ तुहाड़ियाँ। मेरिया ड्योडिया पैर रखी करी दिख्यो। तुहाड़िया मारया माउ दा कसम। मैं हुन अपूँ नी औणा। पुलिस ही दस्तक देग।

(टाँग काट देनी है मैंने तुम्हारी। मेरे द्वार पर पैर रखकर देखना। मैं अब खुद नहीं आऊँगा। पुलिस ही दस्तक देने आएगी।) तुलसी शाह गालियाँ देता वापिस आ जाता।

जे नी पुज्जे तां दिखी लियो। सारे डंगर नई खोल करी लई आंदे, तां मेरा नां तुलसी शाह नी। (अगर नहीं पहुँचे तो सारे पशु खोलकर अपने घर ले आऊँगा।) जोर–जोर से लोगों को सुनाता कदम घर की ओर बढ़ाने लगा।

वैसे इस संसार में रंग–बिरंगे हैं। कई लोग ऊपर वाले से खौफ खाते हैं। मगर कई खाकर मुकर जानेवाले भी होते हैं। ऐसे लोग तो औरों का खाकर डकार भी नहीं मारते। सुंकाली बाजार से परसा शाह की राशन की नामी दुकान हुआ करती थी। कुछ ही लोग नगद पैसे देकर चीजें ले जाते। अन्यथा बहुधा लोग उधार सामान ही ले जाते। अपने जमाने की यह पाँच गाँवों में एक मानी हुई दुकान थी। परसा शाह जी भी लंडे भाषा में लाल बही पर उधार का हिसाब लिख लेते। पाँच के बीस ही लिखते।

महाराज! शाही की जूतियाँ घिस गयीं उन लोगों के घरों में चक्कर लगा–लगाकर। जिन लोगों ने लेकर खाया था। किसी ने पैसे उन्हें वापस नहीं दिये। यह पैसे न मिलने थे, न मिले। लोग साफ मुकर जाते। या बहाने पढ़ने लग जो। परसा शाह खूब गालियाँ निकालते। पर ढीठ लोग लून–लोटा हाथ में पकड़कर मुकर जाते कि हमने परसा शाह से कोई उधार नहीं लिया। कहते हैं कि मूये और मुकरे का कोई इलाज नहीं होता। एक दिन ऐसा आया कि चलती–फिरती दुकान का कबाड़ा हो गया। परसा शाह अब एक–एक पैसे का मुहताज था। परिचित लोग उनसे सहानुभूति में शब्दों का फाहा भर रख देते।

जैसे–तैसे शाह और उसकी माँ की जीवन यात्रा रामभरोसे चल रही थी। इसी बीच शाहनी भी प्रभु की प्यारी हो गयी। तब भी तुलसी शाह का भाई गुरदास घर नहीं आया। सभी तुलसी के साथ सहानुभूति दर्शा कर चले गये और तुलसी शाह अब हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था। कोई दे जाये तो खा लेता, नहीं तो शून्य में निहारात बाण की ढीली चारपाई पर लेटा रहता। शाह का पोपला सा मुँह तो बिल्कुल सुख गया था। लोग हँसते और मुँह पर कह देते–शाह तुलसी! देखना तुझे इल्ल उठाकर न ले जाए। बोलते भी हैं न। रोई पिट्टी खसम कीता इल्ल पई चुक्की नीता। कहीं ऐसा न हो जाए। ओये बड्डया शाहा। अपने पेट में कुछ डाल लिया कर। यह पैसा–धेला साथ नहीं जाएगा। भगवान की लीला देखो, जिसके पास पैसा–धेला है, उसे खाने की आज्ञा नहीं और जो बेचारा दीन–दुखिया खाना चाहता है, उसके पास पैसा नहीं है। किसी के पास शुमार दौलत है कि उसे इसका इलम नहीं है। ओ ठाकरा! तेरे रंग अनोखे हैं। तू ऊपर बैठा क्या क्या नाच नचाता रहता है। इस धरा पर यह सब लोग कठपुतली की तरह हैं। ओ मितरा! तुझे भी खाने को हुक्म नहीं है। उसका हमउम्र फत्ता। कहते हैं फत्ता शाह के साथ पाँच जमाते पढ़ा है। बेचारा तुलसी शाह वहाँ से उठकर चला आता। अब वह अवश, असहाय और मजबूर व्यक्ति बनकर रह गया था। अन्न के चार दाने मुँह में डालता भी है या भूखा रहता है। किसी को पता नहीं था।

माँ कभी कभार तुझे एक थाली में खाना लेकर शाह को भेज देती–जा बेटा देख आ। तुलसी शाह ठीक तो है?कहीं शाह बीमार–शमार तो नहीं हम पड़ोसियों का भी कुछ फर्ज हे। माँ थोड़ा–सा दर्द देख पिघल जाती है। किरोसिये के बने रुमाल से ढकी थाली को पकड़कर मैं शाह के घर की ओर प्रस्थान कर जाता। मैंने देखा शाह ढीली जैसी चारपाई पर लेटा शून्य को निहार रहा था। मक्खियाँ उसपर भिनक रही थीं। वह मेरी पदचाप सुनकर उठकर बैठ गया था। अ, मन्नु आ! आ जा, यहाँ बैठ। शुक्र है मालिक का आज किसी माहणु के दर्शन तो किये। शाह की वाणसी शहद से ओतप्रोत थी। मुँह से उसकी लार टपक रही थी। माल सामने जो था।

बच्चेया, आज चाँद कैसे इधर निकल आया। मेरे धनभाग! मेरा मालका। आज किसी आदमी का चेहरा देखा। नहीं तो यहाँ कोई फेरा तक नहीं डालता। अकेला आदमी किसी काम का नहीं होता। भूत होतमा है। बच्चेया तुझे अभी इस बात का ज्ञान नहीं होगा। लेकिन जब मेरी उमर में पहुँचेगा तो खुद–ब–खुद चल जाएगा। मुझे लगा शाह अकेला टूट गया है। उसका पीला चेहरा बड़ा भयानक लग रहा था। चेहरे पर सफेद दाढ़ी बहुत खौफनाक लग रही थी।

और सुना तू, कैसा चल रहा है तेरा स्कूल! अभी परीक्षा तो शुरू नहीं हुई होगी

अंकल जी! कल से पेपर है, सो तैयारी चल रही है। तुलसी शाह ने थाली से सब्जी निकालकर कटोरी में रख ली थी।

बच्चे! पढ़–लिखकर अच्छे आदमी बनो, नहीं तो हमारी तरह बुद्धू बनकर रह जाओगे। तुलसी शाह ने धीरे से कहा।

रुक जरा, यह शीतलफल लेता जा। कुछ कच्चे हैं सो इनको आटे में या तूड़ी में डाल देना। पक जायेंगे। एक थैला भर शीतलफल मुझे देते हुए तुलसी शाह का चेहरा खिल उठा था।

यहाँ तो डारों की डार स्कूल के छोकरू आकर इन शीतलफलों को तोड़ने चढ़ते रहते हैं। देख, कितनी टहनियाँ तोड़ी दी हैं। इन फलों को लोग खाएँ, इससे बेहतर है कि हमारे अपने बच्चे खाएँ तो मुझे खुशी होती है। खुश रहो बच्चे, खूब पढ़ो, लिखो। अच्छे आदमी बनो। उसने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था।

एकाकी मनुष्य कितना अकेला हो जाता है। वैसे भी कहा गया है कि अकेला आदमी भूत होता है। इसका आभास मुझे उस दिन हुआ। शाहनी की उपस्थिति में शाह खिला–सा रहता। अब वह अंदर से टूट चुका था। एक दिन मैंने देखा कि शाह सुबह–सबेरे पिताश्री के साथ चारपाई पर बैठा वार्तालाप में व्यस्त था। चेहरे की रंगत उड़ी हुई थी। चेहरा मुरझाया और बेहद उदास था।

मास्टरजी! हाल काहे का?माँ थी तो दो जने आपस में गल्ल–बात करते रहते थे। दिन का पता नहीं चलता था। अब रातों को करवट बदलकर काट देता हूँ। आपसे विनती है कि मेरे छोटे भाई को एक सख्त सा पत्र लिख दो। कमीज की जेब से मुचड़ा हुआ–सा अंतर्देशीय पत्र निकालकर पिताश्री को थमा दिया। शाह लिखाता जा रहा था और पिताश्री लिखते हुए साथ–साथ पढ़ते भी जा रहे थे।

मेरे प्यारे छोटे गुरदास!

बहुत प्यार। तू इक बार दिल्ली क्या गया?वहाँ का होकर रह गया। मुझे लगता है कि तू वहाँ जाकर निर्मोही हो गया। आगे तो तू इतना निठुर नहीं था। मुझे लगता है कि सारे गाँववासी शहर जाकर जालिम हो जाते हैं, कठोर हो जाते हैं। तुझे माँ के देहांत के बारे में भी पत्र लिखा, पर तू नहीं आया। जिस माँ ने तुझे इतना बड़ा किया, उसे ही भूल गया। अपने बच्चों में इतना मस्त हुआ कि अपने बड़े भाई को ही भूल गया। मर गया या जिंदा है, कभी खोज खबर या सुध नहीं ली तुमने। सुन गुरदास! बड़े ध्यान से सुन। मैं बहुत अकेला, मजबूर और अवश हो गया हूँ। घर में पुरखों की कुछ जमा पूँजी है। भाई! आकर सँभाल ले। यहाँ गाँव में एक बार मुझपर कातिलाना हमला तक हो चुका है। अब यह पुराना माहौल नहीं रहा, जब आदमी आदमी के काम आता था। अब तो आदमी ही आदमी का दुश्मन हो गया है। और सुन, अब गाँव में ही बेरोजगारों की फौज खड़ी हो गयी है। जो लूट खोह के लिए हर समय तैयार रहती है। मैं घर में अकेला पड़ा रहता हूँ। अब कोई हाल–चाल पूछने सामने नहीं आता। इधर कर्जा लेकर लोग मुकर गये हैं कोई हक का पैसा देने को राजी नहीं। मेरे न कोई आगे है, न पीछे है। न मुझे कोई लालच है। सो भाई आकर इस संपत्ति को सँभाल ले, अपने कब्जे में ले ले। फिर इसके बाद बेच या रख, तेरी मर्जी। मुझे इस जायदाद की बड़ी फिक्र हो रही है। यह चिट्ठी न समझकर तार समझना। रब्ब राखा।

तुम्हारा भाई
तुलसी

पिताजी ने पत्र लिखकर एक बार जोर से बाँच दिया। एक पुराने से कागज पर भाई का पता लिखा था। पिताश्री ने बाहर पता भी लिख दिया। एक बार फिर पूरा पत्र पढ़कर सुना दिया। तुलसी शाह अब संतुष्ट था। फिर शाह ने वह पत्र पिताश्री को सौंप दिया और जिम्मेवारी दे दी कि पत्र लेटर बॉक्स में भी डाल देना। भाई को कहाँ फुर्सत कि वह पत्रा बाँचे। भाई को नहीं आना था, नहीं आया।

एक दिन तुलसी शाह भी प्रभु को प्यारा हो गया। किसी ने तार दे दिया। तब भाई को होश आया। अपनी दोनों लड़कियों को साथ लेकर एक बड़ी–सी गाड़ी में आया। प्रभावशाली व्यक्तित्व। कानों के पास चाँदी चमक रही थी। कहते हैं–बड़ी लड़की एम्स में चिकित्सक है, दूसरी लड़की फॉरिन एम्बेसी में सचिव पद पर तैनात है। सारी अंतिम रस्में खुद निभाई। गाँववाले कह रहे थे–छोटे भाई ने अपना कर्तव्य निर्वहन में कोई कोर कसर नहीं रखी। सोलहवें दिन सोला किया गया। पूरे गाँव को बुलाया गया। छोटे बड़े सभी आये। विशेष रूप से बोटी पालमपुर से बुलाये गये। तगड़ी धाम दी गई। बासमती चावल बरताये गये। मीठा सलूना, चने की दाल, मांह की दाल, कई प्रकार की सूखी–सब्जियाँ और विशेष मधरा किये गये। सभी चीजें देशी घी में तैयार की गईं। मुहल्ले में देशी घी की सुगंधि दूर से आ रही थी। सभी गाँववासी कह रहे थे कि छोटे भाई में गाँव ने एक बार बल्ले–बल्ले करवा दी। भाई हो तो गुरदास जैसा।

भाई! मन की कह रहा हूँ। आज भोजन से तृप्ति हो गई। आँखें भी भर गईं और पेट भी भर गया। देखा नहीं, कैसे लोग उंगलियाँ चाट रहे थे। देखो, तुलसी शाह पूरी उम्र माँग–माँगकर खाता रहा। सच कह रहा हूँ भाई! आज शाह की आत्मा प्रसन्न हो गयी होगी। ऊपर से देखकर कहती होगी काश! मुझे भी ऐसा खाना किसी ने परोसा होता। मूआ। पूरी उमर पेट काट–काटकर जीता रहा। कंजूसी करता रहा। उसकी माई लीरें लटकाकर घूमती रही। सब कुछ होते हुए खाने का हुकम नहीं मिला। भरपेट कभी खाया नहीं। साला यह भी कोई जीना हुआ। लख लानत है ऐसे जीने पर। लंबइ किसना किसी से बतिया रहा था।

भगवान किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े। किसी के आगे हाथ न अड़ा पड़े मित्रो! छोटा भाई भी जगहँसाई से बचने के लिए आया है।–कोई कह रहा था।

असली माल मत्ता तो इस भाई का है। वह गरीब तो बेचारा पूँजी की हिफाजत ही करता रहा। जैसे पुराने जमाने में किसी खजाने की सुरक्षा कोई अजगर किया करता था, बिल्कुल वैसे ही। तुलसी शाह भी मुझे लगता है कि पुराने जमाने में कोई साँप रहा होगा। कुंडली मारकर खजाने की रक्षा करनेवाला।–कोई कह रहा था।

अगले दिन भाई ने लोहे के बड़े–बड़े ताले तोड़े। कई सगले, असंख्य पीतल की परातें, कड़ाहियाँ, पीतल के गागरें, कड़छियाँ, कितना भारी सामान निकला। एक ट्रक में सारा सामान भरा गया। गगरेट ले जाया गया। बड़ी बर्तन की दुकान में सब चीजों की तौल–तुलाई की गई। किलो के हिसाब से दुकानदार ने सभी चीजों का तोलमोल किया। दुकानदार ने गिनकर पैसे दे दिये। भाई ने पैस जेब में ठूँस लिये। एक ट्रंक से कितने ही अष्टाम के कागजात मिले, कर्जाइयों के कागज। गाँव के दो मोहतवर लोगों के साथ लेकर छोटा भाई गाँव–गाँव घूमा। अधिकांश लोग मुकर ही गये। मुकरे और मूआँ का क्या इलाज?लोग कहते हैं कि सोने को वे साथ ले गये। दूसरे दिन छोटा भाई मोल भाव करके जमीन और मकान किसी को बेच दिया और अम्ब शहर जाकर रजिष्ट्री भी हो गयी। अच्छे खासे पैसे भाई गुरदास अपनी जेब में डाल लिये।

अगले दिन छोटा भाई और उसकी दोनों लड़कियाँ गाड़ी में बैठकर फुर्र हो चुके थे। अब शाह तुलसी और शाहनी बीती बात की तरह भुलाये जा चुके हैं।

आलेख

जीवन में रिश्तों का औचित्य

डॉ. कविता विकास
कोयलानगर, धनबाद (झारखंड)
मो.–09431320288

एक सिद्धांत पर आधारित कार्य, जो किसी धर्म की बुनियाद रखते हैं और एक संस्कृति का उद्‌बोधन करनेवाली वैवाहिक परंपराएँ, जो किसी आलोचना या किसी परिवर्तन के लिए आह्‌वान नहीं करती हैं, बल्कि अपने विस्तृत आयाम में समय के अनुसार अपेक्षित परिवर्तन के लिए एक खुला मापदंड रखते हुए सहजता से उस परिवर्तन को अपना लेती है, तो वह केवल हिन्दू धर्म में ही संभव है। सनातन धर्म में विवाह के लिए आवश्यक सात फेरे जब आर्य धर्म के तहत तीन चार फेरे में बदल सकते हैं और सिंदूर–बिंदी की अनिवार्यता खत्म हो सकती है तो जाहिर–सी बात है हिन्दू धर्म किसी को किसी भी बंदिश में बाँधे रखने की वकालत नहीं करता। इतनी आजादी, इतना लचीलापन और इतनी पारदर्शिता किसी भी धर्म में नहीं है। यह तो व्यक्ति विशेष या परिवार विशेष पर निर्भर करता है कि वह सामाजिक मूल्यों और नीतियों के तहत किस प्रकार की वैवाहिक संस्था का पालन करता है। आजादी का मतलब यहाँ हिंसा, एक से अधिक स्त्री रखने या परस्त्री के साथ यौन संबंध बनाने की इजाजत नहीं देता। ऐसा करने पर कानूनी कार्रवाई का प्रावधान है। आजादी है, पुरानी मान्यताओं को अपने सुविधानुसार ढालने की, मगर धार्मिक और आस्थिक मूल्यों का उल्लंघन किये बिना।

लिव इन रिलेशन पिछले कुछ दशकों से उभरा अत्याधुनिक लाइफ स्टाइल से जुड़ा एक विवादास्पद और आयातित मुद्दा है, जो महानगरों से होते हुए नगरों और गाँवों तक पहुँच गया है। हिन्दू मैरेज एक्ट कहीं भी इस रिश्ते को मान्यता प्रदान नही करता, जिसमें एक पुरुष और एक स्त्री बिना वैवाहिक बंधन में बँधे सालों एक–दूसरे के साथ रहते हों और फ्री सेक्स की वकालत करते हों। परिवार बनाने का आधार विवाह है। यह आधार इतना मजबूत होता है कि दो अनजान परिवार और दो अनजान व्यक्ति आजीवन एक–दूसरे को साथ निभाने के लिए संकल्पबद्ध हो जाते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर भारत में बिन ब्याहे रहने की प्रक्रिया को कभी भी स्वस्थ मानसिकता के घेरे में नहीं रखा जाता है।

बीसवीं सदी तक लिव इन रिलेशन की परंपरा बहुत कम थी। अति उच्च वर्ग और अति निम्न वर्ग को छोड़ दिया जाए तो समाज के विकास का मापदंड मध्यमवर्गीय परिवार ही है। शिक्षा का प्रचार सबसे ज्यादा इसी वर्ग में हुआ है। लड़कियाँ पढ़ाई और नौकरी के लिए बाहर जाने लगीं। यही बात लड़कों के साथ भी हुई। स्पष्ट–सी बात है, पहनावा, परिवेश और पोषण सभी में बदलाव आया। सूचनायंत्र में क्रांति आ गई और सेवा क्षेत्र ने एक ऐसे ज्ञान को जन्म दिया, जहाँ हर जीवित सभ्यता पैसे की खनक में बदल जाना चाहता है। अकेले रहने की समस्या आन खड़ी हुई। विकास ने असामाजिक तत्वों को भी बढ़ावा दिया। असुरक्षा की भावना से कोई परिवार अकेली लड़की या अकेले लड़के को अपने मकान में शरण देने में हिचकिचाता है। विवाहित जोड़े को किराये पर मकान देने में जोखित होता है। तब अकेला लड़का और अकेली लड़की एक–दूजे को पति–पत्नी बनाकर उनके सामने प्रस्तुत होने लगे। रहने का ठिकाना तलाशने की यह प्रक्रिया धीरे–धीरे स्वतंत्रता और सीमित जवाबदेही के कारण इतनी लुभावनी हो गई कि विवाह का विकल्प बनने लगी। साथ रहते हुए तो जानवर भी पारिवारिक सदस्य बन जाते हैं, फिर इंसान तो सृष्टि का सबसे संवेदनशील प्राणी है। आपस में झुकाव स्वाभाविक है। समस्या अब आने लगी, जब संतान की उत्पत्ति होती है। चूँकि इस रिश्ते में कोई कमिटमेंट नहीं है, इसलिए संतानोत्पत्ति के बाद पुरुषों द्वारा माँ–बच्चे को नहीं अपनाना आत्महत्या, अवसाद और बिखराव का कारण बनता है।

भारत में लिव इन रिलेशन के संबंधों में कोई अलग से कानून नहीं है, लेकिन अलग–अलग समय पर कोर्ट ने याचिकाओं पर निर्णय सुनाये हैं। 2010 के एक फैसले में लिव इन की संतान को जायज माना गया। बच्चों का पिता की संपत्ति पर हक भी माना गया। 2015 के एक निर्णय में लिव इन की स्त्री को संपत्ति में अधिकार का समर्थन मिला। यानी अमेरिका और यूरोपीय देशों की तरह यहाँ भी लिव इन रिलेशन की वैधानिक मान्यता मिली चुकी है। अलग होने पर इन्हें तलाक की प्रक्रिया से गुजरने की जरूरत नहीं, पर स्त्री अपने भरण–पोषण के लिए दावा कर सकती है। उसका शारीरिक और मानसिक शोषण नहीं किया जा सकता। पर परिवार एवं समाज की प्रतिक्रिया झेलने के लिए उन्हें तैयार रहना ही होगा, क्योंकि हमारी संस्कृति इस खुली संस्कृति के लिए इज़ाजत नहीं देती। यह तो पाश्चात्य शैली के प्रभाव, बदलते मूल्यों, उच्च आकांक्षाओं और बंधन–विद्रोह के कारण उपजा एक आचार है, जो परिवार जैसी मान्य और स्थापित संस्था के अस्तित्व को नकारता है। भारतीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में और विश्व में वैवाहिक परंपरा की साख बनाए रखनेवाले भारत देश में यह एक असामाजिक परंपरा लाती है, जो परिवार जैसी सामाजिक संस्था पर प्रश्नचिह्न लगाता है। मात्र यौन आकांक्षाओं के लिए समय बिताने के लिए या अपनी जवाबदेही से पलायन करने के लिए यह रिश्ता मैत्री भाव और उन्मुक्त वातावरण का बिगड़ा रूप है। एक–दूसरे को जाँचने–परखने के लिए भी शादी के पहले बालिग जो हरकतें करते हैं वो सही नहीं है। युगल वर्ग को यह उपयोगी लग सकता है, पर भविष्य में सुरक्षा के अपर्याप्त साधन देखते हुए यह कहीं से उचित नहीं जान पड़ता। यू एस में 2002 के एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण के मुताबिक 15 से 44 वर्ष की स्त्रियों लिव इन रिलेशन में थीं और करीब 65 प्रतिशत युगलों ने पाँच वर्ष के भीतर शादी कर ली। अब भी पश्चिमी देशों में लिव इन रिलेशन बहुत प्रचलित है। आज से एक शताब्दी पूर्व प्रेमचंद ने लिव इन रिलेशन पर एक कहानी लिखी थी। यदि साहित्य को समाज का दर्पण माने तो हर युग में ऐसे संबंध बनते ही रहे हैं, पर वैश्वीकरण के बाद जब खुली संस्कृति का पदार्पण हुआ, तबसे यह ज्यादा प्रचलित हो गया।

बिना परिणय के प्रणय तभी तक मान्य है, जबतक कोई एक किसी तरह का फायदा नहीं उठा रहा हो। लिव इन हमारी विवाह संस्था के अस्तित्व को एक चुनौती है। विवाह के साथ गृहस्थ आश्रम का मौलिक महत्व है, जो वंशवृद्धि के साथ–साथ सामाजिक सुरक्षा और नैतिक मूल्यों का वहन करता है। यह मूल्य एक आदर्श नागरिक बनाकर आदर्श राष्ट्र के निर्माण में सहायक होता है।

शोधपरक आलेख

नारी–स्वतंत्रता का सामाजिक संदर्भ
पुरूष गद्य और तथ्य
स्त्री पद्य और सत्य

सुभाषचन्द्र झा,
बिहार प्रशासनिक सेवा,
सरकार के विशेष सचिव, क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर–812002
मो0–9431208428

आज के सुपरफ़ास्ट उपभोक्तावादी बाज़ारू समय में आदमी– आदमी के बीच मानवीय संबंध के स्थान पर शुद्ध व्यावसायिक संबंध मतलब की पृष्ठभूमि पर स्थापित हो जाने से निज़ी लाभ, लोभ, सुख–सुविधा और स्वार्थ के संघर्ष में निरंतर गुणात्मक वृद्धि हो रही है। स्त्री–पुरुष के बीच नर्मोनाज़ुक अन्तरंग आदिम मधुर रागात्मक भावप्रवण रेशमी रिश्तों की सरस नमी शुष्क हो साहित्य, परिवेश, समाज और संस्कृति में पूरी तरह मूल्यबोध से च्युत क्षरित होकर हाशिए का विषय बन चुकी है। तेज़ रफ़्तार की आपाधापी भरी बेसब्री की ज़िन्दगी ने सबको जैसे बनिया बनाकर रख दिया है। ऐसे व्यापारिक माहौल में अब प्यार करना और प्यार को जीना जैसे संभव ही नहीं रह गया है।

निज़ीकरण और भूमंडलीकरण की चतुर्दिक आवोहवा तथा ग्लोबल पोर्न–संस्कृति की कामुकताभरी बाढ़ ने उन्मुक्तता की सारी हदें पार कर ली हैं और आपस की तमाम संवेदनाएँ छीनकर नर–नारी में निष्प्राणता का संचार कर दिया है। चारित्रिक और नैतिक पतन, जीवन–मूल्य और सोच–विचार गिरावट की पराकाष्ठा का स्पर्श कर रहा है। धर्म, आचार, मर्यादा के पतन का अंत नहीं है। यह समाज और समय नायकत्व खो चुका है। आपस की दूरियाँ बढ़ चुकी हैं। संबंधों का अपनत्व–माधुर्य स्वादहीन होकर रह गया है।

मशीनीकरण की मानसिकता तले औरत एकमात्र 'वस्तु' बन कर रह गई है। चाहे वह इन्टरनेट साइट हो, मोबाईल क्लीपिंग हो, दूरदर्शन हो, आर्ट गैलरी हो या फ़िर फ़िल्मी यौनाकर्षक पोस्टर अथवा पत्र–पत्रिकाओं के लुभावने रंगीन कवर। उसे देखनेवालों की आँखों में होती है सिर्फ़ कामुकताभरी दैहिक भूख! विज्ञापन, वासना और बंधन के बीच आदमी को दिखाई देती है बकौल औरत...उसके वक्ष, उसकी कमर, उसके कूल्हे, उसकी नाभि, उसके अंग–प्रत्यंग। महानतम सभ्यताओं ने भी मूक प्रस्तर प्रतिमा के रूप में ही उसे अपनाया है या फ़िर याद रखा है...बकौल एक मनबहलाऊ मनोरंजक रंगीन साधन के रूप में, बिकाऊ कामोत्तेजक वस्तु के रूप में। दरअसल प्राचीन प्रस्तर युग से लेकर वैदिक युगों तथा विकास के आधुनिक उच्चतम सोपानों तक औरतें तलाश रही हैं आज भी अपनी आदिम नारी–अस्मिता को। सदियों का विकास और विकास का इतिहास क्या वाकई में औरत की अस्मिता का इतिहास भी रहा है? चूँकि पुरुष हमेशा सत्ता के केन्द्र में रहा है, इसलिए उसने अपनी सुविधा अनुसार सदा ही स्त्रियों को अपने अधीन रखा। कामुकता और अश्लीलता का पर्याय बनी नारी चरम नारीत्व की अपनी सार्थकता को बेतरह ढूढ़ती हुई बेतरह यत्र–तत्र–सर्वत्र भटकने को बाध्य हो रही है।

आधुनिक टैक्नोलॉज़ी ने आदमी को बिल्कुल तमाशबीन बनाकर रख दिया है। लोग अब सिर्फ़ देखते भर ही हैं। आज सब चीज़ें पेशेवर हो गई हैं। धीरे–धीरे सब चीज़ें केवल देखने–मात्र की होती जा रही हैं। कोई गाता है, नाचता है, खेलता है–हम सिर्फ़ देखते भर हैं। अब हम प्रेम नहीं करते। फ़िल्म में देख आते हैं। अब तो हर चीज़ कोई दूसरा हमारे लिए कर देता है, हम केवल देखते हैं। झूठ पर है प्रेम, झूठ पर सारे संबंध, सब झूठ का फ़ैलाव है, सारा जगत झूठ पर चल रहा है, देखा–देखी पर चल रहा है। मन को, बुद्धि को, पूर्वाग्रह को, सोच–विचार को एक ओर सरकाकर कोई अपने हृदय की आवाज़ नहीं सुनता, सुनना ही नहीं चाहता। जो दिखता है, वही बिकता है; जो बिकता है, उसी की पूछ होती है। इस प्रकार जीवन में सर्वत्र अवमूल्यन–ही–अवमूल्यन दृष्टिगत होता है। हम ज़िन्दगी के साथ वैसा बर्ताव कर रहे हैं, जैसे कोई हवाई जहाज का उपयोग ठेले की तरह करे। मनुष्य पूरी तरह संवेदनाशून्य यंत्र बनकर रह गया है।

सच है कि मानव चरित्र कभी स्थिर नहीं होता, सुसंगत नहीं होता। उसके भीतर–बाहर उन्मुक्त गतिविधि सहज सरल नहीं होती। उसकी लीला इतनी सूक्ष्म, इतनी जटिल और इतने उतार–चढ़ाववुक्त होती है कि किसी प्रकार का पूर्वानुमान गलत साबित हो सकता है। उसके अनेक अंश और अनेक स्तर होते हैं। इतनी अकल्पनीय और इतनी आकस्मिक होती है चारित्रिक गतिविधि कि उसको पूरी तरह हृदय में बैठा सकना असाधारण क्षमता का काम होता है। ऐसे पतन के काल में जहाँ आज विचार और पुस्तक विमुख होते समाज में सत्ता और संपत्ति को प्राथमिकता मिलती जा रही है, ऐसे में साहित्य और संस्कृति सजावटी प्रवृत्तियों के रूप में बची है। मीडिया और सोशल मीडिया सामाजिक विकृतियों और नारी–शोषण की घटनाओं को लगातार फ़ैला रहे हैं।

आज का हमारा समाज राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अराजकता तथा विघटन की ओर जा रहा है। सर्वत्र अव्यवस्था, अत्याचार, पापाचार, यौनाचार, व्यभिचार और भ्रष्टाचार है। असहिष्णुता और विग्रह का बोलबाला है। हमारा समाज आदिम युग की प्रवृत्तियों की ओर तेज़ी से लौटता–सा लगता है। बाहर का उज़ाला इतना तीख़ा, चकाचौंध भरा और आँखफोड़ू है कि उसमें कुछ भी देखना मुश्किल है, वास्तविकता दृष्टिगत ही नहीं होती। तमाम राजनीतिक और अर्थशास्त्रीय चिंतन पूरी तरह बाज़ार की वैचारिकी को समर्पित है। सबसे अमीर लोग सबसे सही लोग माने जा रहे हैं जो सब को आदर्श, आचार–व्यवहार और मनुष्यता सीखा रहे हैं। विरोध और प्रतिरोध की मुद्राएँ बाज़ार का सामान हैं। आधुनिक जीवन इतना आजीविका–प्रधान अर्थलोलुप हो गया है कि भाव और संवेदना एक ग़ैर ज़रूरी काम की तरह है। स्मृति और कल्पना के लिए जगह नहीं रहा। मूल्यबोध की रक्षा बिना मानवीयता की रक्षा संभव नहीं है। जीवन के अधूरेपन को तथा खंड–खंड सपनों को पूरा करना दूर तक संभव नहीं दिखता। व्यवस्थाएँ चरमरा कर ढहती जा रही हैं।

एक ओर नारी–विमर्श का स्वागतयोग्य दौर शुरू हुआ है तो साथ ही नये खुले बाज़ार के दौर में नारी का इस्तेमाल उपभोक्ता वस्तु की तरह और अधिक ही होता जा रहा है। स्त्री–उत्पीड़न और यौन–अपराध कड़े होते कानूनों के बावजूद रूक नहीं रहे हैं। यदि हम आसमान के तारों को छू नहीं सकते, तो उनकी ओर देख तो सकते हैं न। तारों तक भले ही पहुँच न पायें, पर ज़रूरी है कि उन्हें आँखों से ओझल न होने दें। अधूरेपन को पूर्णता में बदलने की और कोई युक्ति नहीं है।

पुरुष का सीधा–सपाट होना प्राकृतिक स्वभाव कहा जा सकता है। स्त्री की वेशभूषा, लाज़–शरम, भाव–भंगिमा, व्यवहार– आचरण समस्त सभ्य समाजों में प्रचलित है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है कि स्त्रियों का काम हृदय का काम है। उन्हें हृदय देना होता है और हृदय अपनी ओर खींचना होता है। इसलिए उनका काम बिल्कुल सीधा–सपाट, कटा–छँटा, सीधा–सादा होने से नहीं चलता। स्त्री को सुन्दर और शालीन तथा श्लील होना होता है। उनके शरीर की भाषा ज़्यादे सच कहती है। होंठ कुछ कहते हैं, होठों का ढंग कुछ और बोलता है। आँखें कुछ और ही बोलती हैं।

इसलिए उनके व्यवहार में अनेक आवरण, कला, छल–छद्म, आभास इंगित होते हैं। अपनी सहज प्रेम–चेष्टा को सफल करने के लिए अलंकार, रूपक, शृंगार, छन्द, आभास, संकेत और सूक्ष्म गतिविधियों के संग अप्रत्यक्ष तौर–तरीके, परोक्ष इशारे, रहस्यभरे हास्य, इंगित का उन्हें सहज ही

सहारा लेना पड़ता है। निरलंकार होने से उनका काम नहीं चलता। कला ही सौन्दर्य की अनुभूति कराता है। सौन्दर्य प्रेम की अनुभूति है, जहाँ प्रेम की विस्तृति है, वहाँ कमज़ोरियाँ कहाँ रह सकती हैं?सच है कि अमरलत्ती कभी वृक्ष से बड़ी नहीं हो सकती और वृक्ष के सहारे ही अपना अस्तित्व बनाये रखती है; क्योंकि परजीवी होती है।

पुरातन सनातन धर्मशास्त्रों पर एक नज़र डालें तो स्त्री संबंधित अनर्थकारी स्थिति से दो–चार होने को बाध्य होना पड़ता है। शास्त्रों की उक्तियों में स्त्री संबंधित अमर्यादा तथा अश्लीलता के दृश्य–परिदृश्य के कई अवसरों पर खुलकर दर्शन होते हैं। नर–नारी के परस्पर आदिम जैविक और सहज प्राकृतिक संबंधों के विषय में शास्त्रों के वचन कहाँ तक युक्तियुक्त तथा प्रासंगिक हैं, यह तर्क व चिंतन–मनन का एक अलग ही शोधपरक सामाजिक विषय है।

'घृतकुंभसमा नारी तप्तांगार समः पुमान्।'– नारी घृतकुंभ के समान होती है और पुरुष तप्त अग्नि के समान होता है। कहा गया है कि जो भाग्यवान (भाग्य से समृद्ध) हैं, उनके लिए विधि क्या और निषेध क्या, आनंद लूटते हैं। उनके लिए तो 'नीविमोक्षो हि मोक्षः!' किसी वस्तु का सार उसमें 'प्रवेश' करने पर ही मिलता है। व्यभिचार में क्या दोष है?मैथुन प्रकृति का कार्य है या पुरुष का ?ज़िन्दगी में हँसना चाहिए, फँसना नहीं! अपने सिवा, दूसरा कोई नहीं। 'सर्व स्वार्थमयं जगत्'– स्वार्थ के लिए ही यह सारा संसार है। सभी कुछ अपने लिए ही प्रिय होते हैं। कहा गया है कि कंचुकी और नीवी के बंधन से मुक्ति ही मोक्ष है। युवतियाँ कामोन्मत्ता होते ही लज़्ज़ा त्याग देती हैं। 'स्तनौ नितम्बौ परिदोलत्रन्ति। वेगैः श्वसन्ती समदं हसन्ती । पुंवत् रमन्ती समरे जयन्ती। पुण्मेन् लभ्या हि मधु झरन्ती।' कहा गया है कि कामिनी के पुरुषायित रस को पुण्य का प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिए। यह भी कहा गया है कि कामिनी के पीन–पयोधर, स्थूल नितम्ब और सुपुष्ट कंचनजंघा में ही जिसकी सारी पौरुषशक्ति चूक जाये, ऐसा पुरुष ही भाग्यवान होता है।

''योषा वा अग्निगौर्तमस्तस्य उपस्थ एव समिल्लोमानि। धूमोयोनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेंऽगाराः अभिनन्दा विस्फुलिंगाः। तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति।''(बृ०06/2/13)–आग स्त्री है, शिला योनि है, धुआँ रोमावली है, ज़्वाला स्त्री का गुप्तांग है, चिनगारी आनंदकण है, आहुति वीर्य है!''न कांचन स्त्रियंस्वात्मतल्प प्राप्तां परिहरेत् समागमार्थिनीम् (छांदोग्य उपनिषद् 2/13/11)''– जो स्त्री शय्या पर समागम के लिए आ जाये, उसे नहीं छोड़ना चाहिए। ''न कामिनीनां कामश्च शृंगारेण निवर्त्तते अधिके वर्द्धते शाश्वत् यथाग्निर्धृतधारया''(ब्रह्मवैवर्त पुराण)–जैसे घी की धारा से अग्नि की ज़्वाला शांत नहीं होती है, उसी तरह रतिसमागम से कामिनी की कभी तृप्ति नहीं होती है।

''रतिभंगो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम्। रतिभंगेन यद् दुःखं तत्समं नास्ति च स्त्रियाः''(ब्रह्मवैवर्त पुराण)– यदि संभोग– क्रिया के बीच में ही बाधा पड़ जाय अथवा पुरुष अन्यत्र स्खलित हो जाय, तो स्त्री के लिए इससे बढ़कर दूसरा दुःख नहीं हो सकता। ''इगितेनैव नारीणां सद्यो मंत भवेन्मन। करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो। ज्ञात्वा सफुटमभिप्रायं नार्या संप्रेषितो हि यः। पश्चात् करोति संभोगं पुरुषः स च मध्यमः पुनःपुनः प्रेरितस्य स्त्रिया कामार्त्तया च यः। तमा न लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमानहो''(ब्रह्मवैवर्त पुराण)– उत्तम पुरुष वह है, जो बिना कहे ही, नारी की कामेच्छा जान, उसे खींचकर संभोग कर ले। मध्यम पुरुष वह है, जो नारी के कहने पर संभोग करे। और, जो बार–बार कामातुरा नारी के उकसाने पर भी संभोग नहीं करे, वह पुरुष नहीं, नपुंसक है। नारी जब स्वयं मुँह खोलकर संभोग की याचना करे, तब उसकी इच्छा पूरी नहीं करना, नारी का महान् अपमान है।

''यदि कामवती दैवात् कामिनी समुपस्थिता। स्वयं रहसि कामार्त्ता न सा त्याज़्मा जितेन्द्रियैः ध्रुवं भवेत् सोऽपराधी तस्या अद्यावमानतः''(ब्रह्मवैवर्त पुराण)– यदि संयोगवश कोई कामातुरा एकांत में आकर स्वयं उपस्थित होकर संभोग की याचना करे, तो ऐसी नारी को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जो कामार्त्ता स्त्री की ऐसी अवहेलना करता है, वह निश्चय ही अपराधी है। ''यत्र द्वाविन जघनाधिषवरण्या उलूखल सुतानामवेद्विन्दु जल्गुलः'' (ऋग्वेद 1/28)– जैसे कोई विवृत–जघना युवती अपनी दोनों जंघाओं को फैलाए हुई है और उसके ऊखल में मूसल की चोट पड़ रही हो। ''मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः। कलशे शतयाम्ना पथा'' (ऋग्वेद 9/86/16)–कलश में अनेक धारों से रस का फुहारा छूट रहा है। जैसे युवतियों में रस जा रहा है।''शेफो रौमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मूडक इच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्त्रव'' (ऋग्वेद 9/112/40–शेफ (काम–दंड) रोमाच्छादित...विवर में प्रवेश करने को इच्छुक है। हे सोम! तुम चू जाओ। ''अन्वस्य स्थुरं ददृश पुरस्तादनस्थ उरूरवरम्बमाणः शाश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं विभर्षि''(ऋग्वेद9/1/34)– दोनों जंघाओं के मध्य में लटके हुए, पुष्ट, लंबायमान...देखकर ऋषिपुत्री शश्वती ने कहा–वाह! यह तो बहुत सुन्दर भोग करने योग्य...धारण किये हुए हो!''वृषभो न तितग्मशृंगोऽन्तर्यूथेषु रोरूवत्!''(ऋग्वेद 10/86/85)
इंद्राणी ताल ठोकर इन्द्र से कहती है–'जिस प्रकार टेढ़ी सींगवाला साँढ़ मस्त होकर डकारता हुआ संभोग करता है, उसी प्रकार का संभोग मुझसे करो। ''अगाधिता परिगाधिता या कशीकेव जंगहे। ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता'' (ऋग्वेद 1/126/7)– युवती नेवले की तरह समूची देह से लिपटकर इस तरह संभोग करती है कि रस से सराबोर कर देती है।

''कुलस्त्री सेवनं कुर्यात् सर्वथा परमेश्वरि। रमेत् युवतीं कन्यां कानोन्मत्त विलासिनीम्''–कुल स्त्री का उन्मुक्त भोग करना चाहिए। विशेषतः कामोन्मत्ता विलासिनी युवती कन्या का। ''प्रकृतिः परमेशानि वीर्य पुरुष उच्यते। तयोर्योगः महेशानि योग एव न संशयः''– प्रकृति (स्त्री) और पुरुष (वीर्य) का संयोग होना ही 'योग' है।''सीत्कारो मंत्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत्। मर्दनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातः विसर्जनम्''(कुलार्णवतंत्र)–संभोग के समय सीत्कार–वचन ही असली मंत्र–स्तोत्र है, मर्दन ही तर्पण है और वीर्यपात ही विसर्जन है।''यावदंगीनं हास्तिनं गार्दभं च यत्। यावनश्चस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः'' (अथर्ववेद 6/72/3)– कामदण्ड बढ़कर वैसा स्थूल हो जाए जैसा हाथी, घोड़े या गधे का....!

''पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च। न करिष्यति तस्याश्च भविता पातकं भुवि'' (महाभारत आदि पर्व)–पति के कहने पर जो स्त्री पुत्र–प्राप्ति के लिए पर–पुरुष से वीर्य–सींचन (नियोग) नहीं करवाती, वह पाप की भागिनी होती है। ''लक्ष्मीसमशचीभर्त्ता पर स्त्री लोलुपः सदा। नव्या नव्या युवतयो भवन्ति महद्देवानाम् तापु रेतः प्रासिंचत'' (ब्रह्मवैवर्त पुराण)–इन्द्र सदा परस्त्रियों में लिप्त! उन्हें नित्य नयी–नयी युवतियाँ चाहिए। युवतियों में रात–दिन सिचंन करना ही इनका काम। न दुष्येत् संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः स्त्रियों न दुष्यन्ति कदाचन (आपस्तंवस्मृति)– जिस प्रकार बहती धारा में कोई दोष नहीं, हवा में उड़ते हुए धूलिकणों में कोई दोष नहीं, उसी प्रकार स्त्रियों में कोई दोष नहीं लगता। कामिनी सूर्य–चंद्रमा की किरणों और हवा से ही शुद्ध हो जाती है। पुष्पवती होते ही वह निर्मल स्वर्ण जैसी पहले की तरह ही शुद्ध कुँआरी हो जाती है। तभी तो अहिल्या यौनसंसर्ग के उपरांत छलिया इन्द्र से कहती है– हे इन्द्र, अब आप जाइए, आपके संसर्ग से मैं धन्य–धन्य हुई, कृतार्थ हुई, अहोभाव से भर गई!

सच है कि पुरुषरूपी प्रकाश तो वज़ह–बेवज़ह आता– जाता ही रहता है मगर स्त्रीरूपी अँधेरा सदा मौजूद रहता है। अँधेरे के लिए गति की ज़रूरत नहीं पड़ती, उसमें स्वभाव से ही जड़ता, स्थूलता, पृथुलता होती है। स्त्रीरूपी ताले बड़े ही होते हैं और पुरुषरूपी कुंजी! सदा छोटी ही होती है। स्त्री के स्वच्छ आकाश में पुरुषरूपी बादल तो उठते ही रहते हैं, लेकिन उन आवारा बादलों से पवित्र आकाश कभी छिन्न–भिन्न तो नहीं हो जाता। आकाश सदैव

अखंड, अभिन्न, जैसे–का–तैसा ही बना रह जाता है। बादल उमड़–घुमड़ कर, आकाश पर पूरी तरह छा कर गरजते–बरसते हैं तथा पूरी तरह चूककर धराशायी रह जाते हैं । बादल आते हैं, जाते हैं, मगर आकाश जस–का–तस बना ही रह जाता है! आकाश कभी मैला नहीं होता। कितनी धूल–ध्वांस उठती है, कितने आँधी–तूफ़ान आते–जाते हैं, कितने ही काले बादल उमड़–घुमड़ कर बेतरह छा जाते हैं कि सूरज तक दिखाई नहीं पड़ता, मगर फ़िर भी आकाश कभी गंदा नहीं होता। आकाश को कलुषित करने का कोई उपाय नहीं। आसमान का कुछ भी नहीं बिगड़ता है। दर्पण में बिंब बनते–बिगड़ते रहते हैं। फ़िर भी दर्पण जैसे–का–तैसा ही रह जाता है। प्रतिबिम्बों के बनने और बिगड़ने से दर्पण का कुछ भी नहीं बिगड़ पाता है।

नारी–स्वभाव में एक प्रकार की प्राकृतिक जड़ता पायी जाती है। जड़ प्रकृति की काम–लीलायें अपने स्वभाव से पूर्ण संवेदनशीलता के संग हर बाहरी क्रिया के विरुद्ध अपने निर्धारित कालक्रम के अनुसार स्वाभाविक प्रतिक्रिया का समयानुसार स्वतः प्रदर्शन करती है। ऐसा न तो समय के पूर्व और न ही उचित समय के पश्चात् ही होता है। प्रकृति प्रत्येक कार्य को पूर्ण चेतन होकर करती है, उसमें कोई भी बात एकाएक, जल्दबाजी में और आकस्मिक नहीं होती। प्रकृति का हर कार्य एक निश्चित नियम के अनुसार नियत समय पर ही होता है। समय से पहले या समय के बाद नहीं! स्त्रीप्रकृति स्वीकार–मात्र ही करती है, सिर्फ़ ग्रहण करती है और अपनी ओर से न तो गति करती है और न ही किसी प्रकार का सहयोग। जब उसमें क्रिया की जाती है, तो उस क्रिया के विरुद्ध और क्रिया की मात्रा और गति के अनुरूप प्रतिक्रिया–मात्र की करती है। अपने आप ही क्रियाशील नहीं होती। प्रकृति को अपनी जड़ता का परित्याग करने में अधिक समय लगता है। प्रकृति में झटपट और आनन–फ़ानन में कुछ नहीं होता है।

स्त्रीसागर अपने आप में परिपूर्ण है, जल से भरापूरा रहता है, फ़िर भी स्वयं में शांत, सहज, स्थिर बना रहता है। न तो क्षुब्ध होता है, न अशांत, न बेचैन, न अधीर, न उतावला, न बेसब्र, न आतुर और न शीघ्रता में । सागर अपने तट की सीमा और मर्यादा का स्वयं ही कभी उल्लंघन नहीं करता और न ही कभी विचलित होता है। सागर अगर अपने तट की मर्यादा का अतिक्रमण कर जाए तो फ़िर कुछ बचेगा?सब कुछ तहस–नहस हो जायेगा, दह–बहकर रह जायेगा। प्रलय ही आ जायेगा।

मूलतः स्वभाव से स्त्री हृदयप्रधान होती है और पुरुष मस्तिष्कप्रधान होता है। स्त्रीपुरुष–समागम के गहरे सघन क्षणों में जहां समयशून्यता, अस्तित्वहीनता, अहंकारशून्यता पसरा होता है, जहाँ सारे सोच–विचार रुक जाते हैं, सारी मानसिक आपाधापी थम जाती है, सब कुछ जैसे ठहर–सा जाता है, बाहरी दुनिया से संपर्क भंग हो जाता है–एक क्षण को जब हम होते ही नहीं, कोई और ही होता है, एक क्षण को न समय होता है, न स्थान होता है, न पात्र होता है, एक क्षण को हम किसी और ही लोक में खो जाते हैं, किसी और ही संसार में प्रविष्ट कर जाते हैं, हम कहीं और होते हैं। इस क्षण में परमात्मा और प्रकृति का महामिलन– महारास हो रहा होता है, पुरुष और प्रकृति मिलकर एकाकार हो रहे होते हैं, पृथ्वी आकाश में लीन हो रही होती है, पदार्थ और चेतना का भेद मिट जाता है, सृष्टि और स्रष्टा में अंतर नहीं रह जाता, अज्ञात ज्ञात की तरफ़ हाथ फ़ैलाता है–द्वन्द्वसमाप्त हो जाते हैं, निर्द्वन्द्वकी घड़ी होती है–उस क्षण में भी पुरुष तृप्त नहीं हो पाता, जीभर कर उस क्षण को पी नहीं पाता। आनन्द में भी वह डरा–डरा ही होता है, रसमय नहीं रह पाता। उसका मस्तिष्क प्रश्नातुर बना रहता है और क्षण हाथ से छिटक जाता है। पुरुष उस क्षण–विशेष में भी मानसिक द्वन्द्वऔर संदेह में ही घिरा होता है। पूरी तरह उस क्षण में डुबकी नहीं मार पाता। पूर्ण तृप्ति का अनुभव नहीं कर पाता। जबकि सत्य इसी क्षण में होता है, यहीं होता है, कहीं और नहीं होता । उत्तर के लिए इस समय प्रश्न को छोड़ना होता है। प्रश्न आया तो मन आया और मन आया तो हृदय अनुपस्थित हुआ। हृदय में प्रश्न नहीं होते, अनुभव होते हैं और मस्तिष्क में सिर्फ़ प्रश्न होते हैं, अनुभव नहीं होते हैं। निष्प्रश्न डुबकी मारना होगा। मन को, बुद्धि को हटाकर हृदय की सुनना होगा। उन क्षणों में होशपूर्वक, बोधपूर्वक एक–एक बूँद का अनुभव करते हुए प्यास–ही–प्यास हो जाना होगा और तृप्त होती हुई प्यास के अनुभव से गुज़रना होगा। उन क्षणों में हमारे और अस्तित्व के बीच छन्द छिड़ा होता है– कोई विरोध नहीं रह जाता, इसलिए सुख का अनुभव होता है। यहाँ मन को विचारों से रिक्त करके और मन से 'अ–मन' होकर ही पहुँचा जा सकता है। मगर इस समय भी पुरुष कहीं और ही होता है और उसका मन किसी और ही जगह होता है, जबकि सुख उसके पास है, वहीं है जहाँ वह है। लेकिन पुरुष अंधा है, इसलिए इस क्षण में उपस्थित न होकर कहीं और होता है।

परन्तु विडम्बना तो यही है कि सुख के उन ख़ास क्षणों में भी पुरुष का मन कभी थिर नहीं होता, डावाँडोल ही रहता है। मन उस क्षण में भी भटकाता है–यह करो, वह करो, ऐसा करो, वैसा करो। इधर चलो, उधर चलो। मन शांत नहीं होने देता। प्रसन्न, संतुष्ट नहीं होने देता। कामनाओं में उलझाये रहता है और कामनाओं का कोई अंत नहीं। मन जल्दी करता है, संदेह करता है लेकिन जितना अधीर होंगे, उतनी ही देर हो जायेगी। धैर्य रखें, तो जल्दी होगी। अधैर्य करेंगे, देर लग जायेगी। बहुत जल्दबाजी की तो बहुत देर लग जायेगी। जल्दबाजी करेंगे–इधर आयी, उधर गई, कुछ तृप्ति नहीं होगी। जल्दबाजी नहीं की तो अभी हुई। प्रतीक्षा ज़रूरी है। धीरज और अनंत धैर्य। अन्य कोई मार्ग नहीं है। जब अस्तित्व की मरज़ी हो। उस क्षण में कुछ समझने को नहीं है, सिर्फ़ जीने को है। आनंद के लिए चाहिए सहजता और सरलता। मन अर्थात् अतृप्ति, प्यास, बेचैनी, अधीरता, जल्दबाजी, असंतोष, अस्थिरता, असहजता, अशांति–यह या वह, ऐसा या वैसा, यहाँ या वहाँ, इधर या उधर। मन तृप्त–प्रसन्न हो नहीं सकता। मन से कोई निर्णय नहीं होता। मन तो सोच–विचार में ही उलझा रह जाता है, जबकि हृदय सीधे छलाँग लगा लेता है।

संपूर्ण पद्यमयी स्त्री की उत्सुकता भाव में है, भक्ति में है, सेवा और समर्पण में है, गीत–संगीत में है, कला और सौन्दर्य में है, नृत्य में है, प्रत्यक्ष में है, अभी में और सामने में है–अतीत और भविष्य में नहीं। स्त्री की उत्सुकता हृदय में है–तर्क, बुद्धि और गणित में नहीं, चिंतन–मनन, जीवन दर्शन और सोच–विचार में नहीं है, भरपूरजी लेने और संपूर्ण उपयोग–उपभोग कर लेने में है, पूरी तरह आत्मसात् कर लेने, भींग कर डूब जाने में है–बहने और तैरने में नहीं, समझदारी–चालाकी–होशियारी में नहीं, परिपूर्ण निर्दोषिता में है, प्राकृतिक संपूर्णता में है। स्त्री की उत्सुकता प्रीत में है, प्रीतिकर वचन और प्रीत–व्यवहार में है, प्रेम की तृप्ति में है और पूरी तरह रस में है, सुगंध में है और सुन्दरता में है, लिपिबद्ध हो जाने में है और वाद्ययंत्र बन जाने में है, पी लेने, प्राप्त कर लेने, ग्रहण करने और संपूर्ण स्वीकार में है। स्त्री की उत्सुकता किसी भी तरह किसी प्रकार की समझ में नहीं है, मदमस्त हो जाने में है, निषेध–नकार–विरोध में नहीं है। स्त्री का अस्तित्व प्रेमकाव्य से भरपूर होने के कारण दुविधाग्रस्त नहीं हो सकता, इसलिए स्त्री का व्यक्तित्व कभी खंडित नहीं होता, उसका मिलन कभी आधा–अधूरा या अपूर्ण नहीं हो सकता। परन्तु पुरुष का स्वभाव कभी सहज नहीं होता। वह इतने आवरण ओढ़े होता है कि उसका मिलन कभी गहरा नहीं हो सकता। उसके पात्र में बहुत सारे छिद्र होते हैं और पात्र हमेशा उल्टा ही रखा होता है, यही कारण है कि मिलन के क्षणों में भी स्त्री–प्रेम की बारिश में कभी भर नहीं पाता। क्योंकि वह जो कुछ भी कहना या करना चाहता है, वैसा नहीं हो पाता । सच है कि जो भी स्पर्श करने के योग्य है, वह बुद्धि के परे है। अपने अहम् के कारण पुरुष का मिलन पूर्ण नहीं होता। बिना शून्य में उतरे हुए पूर्ण को उपलब्ध होना असंभव है। समागम के क्षणों में एक ऐसी घड़ी आती है जब अस्तित्वहीन होना होता है। जीवन्त मिलन की शर्त बड़ी बेबूझ और अतर्क्य होती है। हज़ारों–हज़ारों फूलों से बूँद निचोड़ने लगता है, धारणाशून्यता की स्थिति से गुज़रना होता है और पूर्व धारणाएँ लेकर इसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। अपना अतिक्रमण करने को आतुर होना होता है।

लेकिन सच्चाई तो यही है कि ऐसा कुछ भी नहीं होता है। शरीर से शरीर लगाकर भी समागम में स्त्री–पुरुष हज़ारों कोस के फ़ासले पर दूर ही होते हैं, निकट नहीं होते हैं क्योंकि प्रेम ही नहीं होता। प्रेम तो निकटता है।

बार–बार पुरुष द्वारा लिखते रहने के बावजूद कोरी–की– कोरी स्लेट जैसी ही रह जाती है स्त्री। पुरुष स्त्रीरूपी स्लेट पर बार–बार लिखकर भी जैसे कुछ भी नहीं लिख पाता। पानी पर खिंची गई लकीरें मात्र ही साबित होकर रह जाती हैं। इधर खींची नहीं कि धर मिट गई। पुरुष की तरह प्रकृतिरूपी नारी को गतिशील नहीं होना होता है। इसलिए पुरुष की तरह उसे श्रम, स्खलन और शिथिलता के अनुभव से गुज़रने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। प्रारंभ से समापन तक वह एक जैसी ही बनी रह जाती है। वृक्ष तो घनी छाया से भरा है, लेकिन कोई उसके नीचे विश्राम ही न करे तो वृक्ष कुछ भी नहीं कर पायेगा। सरोवर जल से भरापूरा है। प्यास बुझाने के लिए सरोवर के पास कोई न जाए तो सरोवर स्वयं चलकर प्यासे के पास नहीं आ सकता है।

पुरुष का सारा संयोग तथ्य है–अभी है, अगले ही पल नहीं है। तथ्य का अर्थ होता है जो मात्र अभी है। सत्य का अर्थ है जो सदा है। जगत के सारे संयोग तथ्य हैं। जो संयोग से नहीं बनता, वही सत्य है। स्त्री के संयोग सत्य के होते हैं, सदा हैं। जो कहीं आता जाता नहीं, जिसमें कोई गति नहीं, जो सदा मौजूद है, जैसा है, वैसा ही होने में राजी है, सर्वस्वीकार भाव में है, सदा शांत है, वही सत्य के करीब है। सच है कि पुरुष गद्य और तथ्य है तथा स्त्री पद्य और सत्य है।

केदारनाथ सविता
लालडिग्गी सिंहगढ़ गली मिर्जापुर उ.प्र.,
मो. 9935685068

भारत

यह कविता अपने आपमें एक ग्रंथ समेटे हुए है
भारत एक कृषि प्रधान देश है
जहाँ खेतों में फसल की जगह
खड़ी हो रही है बहुमंजिली इमारतें
जहाँ मौसमों के खिलाफ होती है साजिशें
बैठकें होती हैं पर्यावरण के लिए
भारत एक कुर्सी प्रधान देश है
जहाँ कुर्सी के लिए बिकता है ईमान
बिकता है सच
बिकती है आत्मा
भारत एक रिश्वत प्रधान देश है
रिश्वत से ही बने हैं बड़े–बड़े बाँध
और भरे हैं आज के कर्णधारों के पेट
गायब हो गये हैं
बड़े बड़े तालाब नदी
और गाँव के पोखर
पटवारी के नक्शे पर
रिश्वत ले–देकर।

कविता

डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी
24 अंचल कॉलोनी,
श्यामगंज, बरेली,
मो. 9719687166

मन का पर्यावरण

मन का पर्यावरण प्रदूषित
शुद्धिकरण की बात
खारापन है सागर में
कहते जिसको रत्नाकर
अब रत्नों के साथ मलिनता
मेधावी था, दुर्मेधा से
करता है आघात
निर्धनता, भूखमरी, कुपोषण
रोग अन्धेर दीखा
नाम मात्र का ज्ञानी तूने
नहीं प्रकृति से सीखा
हर दिन नई समस्याएँ
कुछ ज्ञात और अज्ञात
दानवता ने जन्म दिया
आतंकवाद कहलाया
इस कुपूत ने बस कुमार्ग से
मन अपना बहलाया
मानवता का प्रात छीनकर
सौंपी शाबित रात
बदली आवोहवा तमी से
सब कुछ बदल गया
हलचल है उमड़ी कैसी
जिससे है मचल गया
धरती जैसे सुन्दर ग्रह पर
धात और प्रतिघात।

दर्द का उपहास

कौन पढ़ना जानता भाषा हृदय की
खो गया है नेह का इतिहास
दर्द का करते रहे उपहास
वो चहकता स्वप्न असमय सो गया
कितनी शंकाएँ वही हैं वो गया
जिसका चिरजीवी समझते नहीं अब
सौंप प्रश्नों को कहीं वो खो गया
व्यंग्य वाणों की हुई वारीश में
झेलता निरुपाय है संत्रास
दर्द का करते
काल से डरकर भी चलते रहे
सुख क्षणिक जिनसे नहीं छलते रहे
रश्मियों को सौंपना भी धर्म है
सिर्फ सूरज से नहीं ढलते रहे
यदि मनुजता के लिए हैं घाव ही
अर्थ वंचित आयु है संत्रास
दर्द का करते

शृंखला भारती,
इंटर स्कूल सबौर, भागलपुर
8298469721

बावली आँधी

क्या खूब आँधी आई
कर गई जुदा पत्तों को
पेड़ों से
कितने घर उजड़े
लोग बेघर हुए घरों से
कोसते रहे सभी
आँधी को
फिक्र थी सबको अपनी
पर
देखा नहीं किसी ने
आँधी के दर्द को
समझा नहीं किसी ने
उसके जज़्बात को
ये आँधी जो इतनी
पागल हुई जा रही थी
आखिरकार
आया बादल
समझा उसके दर्द को
और... भिंगो दिया
अन्तस् तक
शांत... निस्तेज
बादल की आगोस में
सो गई बाबली आँधी

ख्वाब की जिद

कितनी बार कहा
ख्वाबों से
यूँ ना मेरी नींदों में
आया करो
कितनी तन्हा हूँ मैं
बार–बार न बताया करो
ख्वाब ने कहा
मैं आईना हूँ
तेरे दिल का
रहेगी तन्हाई जबतक
दिल में तेरे
आऊँगा नींदों में तेरे।

समीक्षा

पत्थर तोड़ती औरत

मनोज चौहान

दयानन्द जायसवाल

'पत्थर तोड़ती औरत' कविता संग्रह समय और परिवेश की समस्याओं, चिंताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोक संस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित सर्वहारा वर्ग के श्रम साध्य कर रहे लोग की पीड़ा की मर्मस्पर्शी पड़ताल एवं मार्मिक अभिव्यक्ति का यह प्रतिध्वनित प्रतिबिम्ब है। पुस्तक का नाम ही आँखों के सामने एक ऐसा बिम्ब बनाता है, जिसके माध्यम से एक सामाजिक विद्रूपता का, एक वैवश्य का, एक श्रमिक पीड़िता नारी का तथा उन जनों का, जिसने परिस्थितियों के सामने अपना माथा टेक दिया है, उसका स्वरूप सामने आ जाता है।

किसी भी कालखंड की कविता अगर अपनी परंपरा से कुछ चीजों को साथ लेकर आगे बढ़ती है तो समय के साथ स्वयं अपने आपमें अपना कुछ नया चीज जोड़ती है। इस प्रकार कविता अपनी कुछ प्रतिनिधि युगीन प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्य में अपना स्थान बनाती है।। इस लिहाज़ से देखा जाए तो वर्तमान कविता, जिसे हम समकालीन कविता कहते हैं : अपने तमाम उतार–चढ़ाव के बावजूद लगातार आगे बढ़ रही है तथा अपने कथ्य, शिल्प के माध्यम को भी लेकर आगे बढ़ रही है। उक्त शीर्षक कविता में कवि रूप का सूक्ष्मतम एवं प्रभावशाली प्रयोग, जो मानवीय रुझान से भी ऊपर उठकर लोक–संवेदना की व्यापकता को प्रकट करता है। मेहनतकश लोगों की प्रतीकात्मक पत्थर तोड़ती वह औरत अपने हाथों से देशकाल, समय–समाज, स्थिति– परिस्थिति इत्यादि के भीतर जमे पानी और कीचड़ को उलीचना चाहती है।

इनकी कविताओं में एक ऐसे वर्ग हैं, जो छाया–विहीन अभिशप्त, विलासपूर्ण जीवन जीनेवाले के रक्षक बने हैं उनकी चिंताओं में कवि प्रगतिवादी चिंतन की धाराओं से अपनी कविताओं के माध्यम से पाठकों को अभिसिंचित करते हैं। कविता समाज की अतिवादी निरंकुश और सामंती चेतना पर भी तेज प्रहार करती है। अभावग्रस्त इंसान से संवेदनात्मक सामीप्यबोध सहजता से दिखाई पड़ता है, जिसमें यथार्थबोध, वर्तमान चुनौतियों तथा सामाजिक संघर्षों से रिश्ता है। उसकी यंत्रणा के बारे में पाठक से संवाद स्थापित करने का माध्यम इनकी कविताएँ हैं। कवि अपनी रचना में अपने अंदर के इंसान और अपने अधूरे सपनों को ही जीता है, जिसे 'संवेदनाएँ' शीर्षक से वयाँ करते हैं–

और जब उफान
हो जाता है बेकाबू
तो सोच के समन्दर से
उड़ेल देता हूँ चंद बूँदें
शीतल जल की मानिंद
झनझनाहट के साथ
थम जाता है फिर उफ़ान
मैं लौट आता हूँ
पुनः
उसी तरह....

इसमें भाव–धरातल सहज और प्रत्यक्ष है तथा अन्य कविताओं में सामाजिक मर्यादा और रोज़–ब–रोज़ की रूढ़ परिपाटियों के बंधनों के कारण स्त्रियों, किसानों, खेत–मजदूरों, आम मेहनतकश तथा निम्न मध्यवर्गीय के गरीब लोगों पर क्या बीत रही है?इन्सानियत क्यों खोता जा रहा है?श्रमशील जन का श्रमफल हड़पनेवालों की काली करतूतें मानव गरिमा के साथ क्या सलूक कर रही है?ऐसे ढेर सारे सामाजिक सांस्कृति अस्तित्व को दो टूक कह गये हैं। प्रगतिशीलता एक प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति को यथार्थ सत्य की ओर आकृष्ट करती है। इसमें जीनेवाला रचनाकार आत्म–विश्लेषण करता है और आत्म अनुशीलन से अपने समय तथा समाज के सत्य को उद्घाटित करता है तथा आम आदमी को शोषित एवं उत्पीड़ित जीवन जीने के लिए विवश करनेवाले विचारों का विरोध करता है। यह उदार एवं मानवीय भावनाओं से संतुष्ट होता है। इनकी भी इसी प्रकार आत्मोन्मुख कर आत्मकेन्द्रिता के दुर्ग को तोड़कर हमें एक अच्छा मानव बनने की सलाह देती है। साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना कला की पूर्ति के लिए की जाए तथा उसमें सहृदयता, सामाजिक ज्ञान, विकासशील विचारधारा, साम्यवादिता एवं मानवीय मूल्यबोध हो, जिसके अस्तित्व की पहचान इन्होंने कविता के माध्यम से करायी है।

मैं पिरो देना चाहता हूँ
कविता की इन चंद पंक्तियों में
शोषण के शिकार
उस मजदूर की व्यथा को
ग ग ग
बन्द है जिसकी किस्मत
चंद ठीकेदारों की मुट्ठी में
साक्षात् प्रारूप है वह
इस गले–सड़े समाज की
हैवानियत का.....।

कविता में वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म–चेतन व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। आज सभ्यता ह्रासग्रस्त है, इसलिए कविता में तनाव होना स्वाभाविक है। इसके भीतर कई स्वर हैं, कई शैलियाँ, कई शिल्प और कई भाव पद्धतियाँ एवं जीवन दृष्टियाँ हैं। व्यक्तिगत भावना के धरातल पर समाज के शोषकों और उत्पीड़कों के विरुद्ध विषम–समाज के भीतर गरीब मध्यवर्गीय जनता की स्थिति से उनका लगाव है। मानव जीवन को मूर्त और साक्षात् करनेवाली रचनात्मक शक्ति के रूप में उपस्थित किया गया है। इसके भाव–बोध के अंतर्गत मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और अधिक दत्तचित्त हों तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को रोकें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय–योजना करें।

राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति में हुए परिवर्तनों का प्रभाव जनमानस पर भी पड़ता है। लोगों की जीवन शैली और आदतों के साथ चरित्र भी बदलता है। नवीन परिस्थितियों ने जहाँ प्रतिस्पर्धा बढ़ाई, वहीं संदेह,संवेदनहीनता और तिक्तता को भी जन्म दिया। यही कारण है कि जनमानस के रागात्मक संबंधों और विचारों में गुणात्मक परिवर्तन हुए। समाज में कई तरह की विडम्बनाएँ और विसंगतियाँ पैदा हुईं। भौतिक परिवर्तन ने मनुष्य की संवेदना को ही बदल दिया। परिवर्तन की इस दौर में साहित्य–क्षेत्र पर प्रभाव डालने लगा। वही जनवादी मूल्यों को बचाने की प्रतिबद्धता के प्रभाव को आपकी इन कविताओं ने भी प्रभावित किया।

इस प्रकार आपकी कविताओं में परिष्कृत रूप विधान, शिल्पयात्रा एवं सृजनशीलता अंतर्निहित है। पुस्तक पठनीय और सग्रंहणीय है।

लोककथा

बहुरानी

सीमा असीम सक्सेना
बरेली
9458606469

किसी गाँव में एक सेठ रहता था, उसका एक ही बेटा था, जो व्यापार के काम से परदेश गया हुआ था। सेठ की बहू एक दिन कुएँ पर पानी भरने गई। घड़ा जब भर गया तो उसे उठाकर कुएँ के मुंडेर पर रख दिया और अपना हाथ–मुँह धोने लगी, तभी कहीं से चार राजगीर वहाँ आ पहुँचे। एक राहगीर बोला–'बहन! मैं बहुत प्यासा हूँ, क्या मुझे पानी पिला दोगी?'

सेठ की बहू को पानी पिलाने में थोड़ी झिझक महसूस हुई; क्योंकि उस समय कम कपड़े पहने हुए थी। उसके पास लोटा या गिलास भी नहीं था, जिससे वह पानी पिला देती। इसी कारण वहाँ उन राहगीरों को पानी पिलाना उसे ठीक नहीं लगा।

बहू ने उससे पूछा–'आप कौन हैं?'

राहगीर ने कहा–'मैं एक यात्री हूँ।'

बहू बोली–'यात्री तो संसार में केवल दो ही होते हैं, आप उन दोनों में से कौन हैं?अगर आपने मेरे सवाल का सही जवाब दे दिया तो मैं आपको पानी पिला दूँगी, नहीं तो नहीं पिलाऊँगी।'

बेचारा राहगीर उसकी बात का कोई जवाब नहीं दे पाया, तभी दूसरे राहगीर ने पानी पिलाने की विनती की। बहू ने दूसरे राहगीर से पूछा–'अच्छा, आप तो बताइए कि आप कौन हैं?'

दूसरा राहगीर तुरंत बोल उठा–'मैं तो एक गरीब आदमी हूँ।'

सेठ की बहू बोली–'भइया! गरीब तो केवल दो ही होते हैं, आप उनमें से कौन हैं?' प्रश्न सुनकर दूसरा राहगीर चकरा गया, उसको कोई जवाब नहीं सूझा, तो वह चुपचाप हट गया।

तीसरा राहगीर बोला–'बहन! मुझे बहुत प्यास लगी है। ईश्वर के लिए तुम मुझे पानी पिला दो।'

बहू ने पूछा–'अब आप कौन हैं?'

तीसरा राहगीर बोला–'बहन! मैं तो एक अनपढ़ गँवार हूँ।'

यह सुनकर बहू बोली–'अरे भाई! अनपढ़ गँवार तो इस संसार में बस दो ही होते हैं, आप उनमें से कौन है?' बेचारा तीसरा राहगीर भी कुछ नहीं बोल पाया।

अंत में चौथा राहगीर आगे और बोला–'बहन! मेहरबानी करके मुझे पानी पिला दें। प्यासे को पानी पिलाना तो बड़े पुण्य का काम होता है।'

सेठ की बहू बड़ी ही चतुर और होशियार थी, उसने चौथे राहगीर से पूछा–'आप कौन हैं?'

वह राहगीर अपनी खीज छिपाते हुए बोला–'मैं तो...बहन बड़ा ही मूर्ख हूँ।'

बहू ने कहा–'मूर्ख तो संसार में केवल दो ही होते हैं, आप उनमें से कौन हैं?

वह बेचारा भी उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। चारो पानी पिये बगैर ही वहाँ से जाने लगे तो बहू बोली–'यहाँ से थोड़ी दूर पर मेरा घर है। आपलोग कृपया वहीं चलिये। मैं आपलोगों को पानी पिला दूँगी।'

चारो राहगीर उसके घर की तरफ चल पड़े। बहू ने इसी बीच पानी का घड़ा उठाया और छोटे रास्ते से अपने घर पहुँच गई। उसने घड़ा रख दिया और अपने कपड़े ठीक तरह से पहन लिये। इतने में वे चारों राहगीर उसके घर पहुँच गये। बहू ने उन सभी को गुड़ दिया और पानी पिलाया, पानी पीने के बाद वे राहगीर अपनी राह पर चल पड़े।

सेठ उस समय घर में एक तरफ बैठा यह सब देख रहा था, उसे बड़ा दुःख हुआ। वह सोचने लगा, इसका पति तो व्यापार करने के लिए परदेश गया है और वह उसकी गैरहाजिरी में पराये मर्दों को घर बुलाती है, उनके साथ हँसती बोलती है। इसे तो मेरा लिहाज नहीं है। यह सब देखकर अगर मैं चुप रह गया तो आगे से इसकी हिम्मत और बढ़ जाएगी। मेरे सामने इसे किसी से बोलते–बतियाते शर्म नहीं आती तो मेरे पीछे न जाने क्या–क्या करती होगी। फिर एक बात यह भी है कि बीमारी कोई अपने आप ठीक नहीं होती, उसके लिए वैद्य के पास जाना पड़ता है, क्यों न इसका फैसला राजा पर ही छोड़ दूँ। यही सोचता वह सीधा राजा के पास पहुँचा और अपनी परेशानी बताई। सेठ की सारी बातें सुनकर राजा ने उसी वक्त बहू को बुलाने के लिए सिपाही बुलवा भेजे और उनसे कहा–'तुरंत सेठ की बहू को राजसभा में उपस्थित किया जाए।'

राजा के सिपाहियों को अपने घर पर आया देख उस सेठ की पत्नी ने अपनी बहू से पूछा–'क्या बात है बहूरानी! क्या तुम्हारी किसी से कहा–सुनी हो गयी थी, जो उसकी शिकायत पर राजा ने तुम्हें बुलाने के लिए सिपाही भेज दिया?'

बहू ने सास की चिंता को दूर करते हुए कहा–'नहीं, सासू माँ! मेरी किसी से कोई कहा–सुनी नहीं हुई है, आप जरा भी फिक्र न करें।'

सास को आश्वस्त कर वह सिपाहियों से बोली–'तुम पहले अपने राजा से यह पूछकर आओ कि उन्होंने मुझे किस रूप में बुलाया है–बहन, बेटी या फिर बहू के रूप में?किस रूप में मैं उनकी राजसभा में आऊँ?

बहु की बात सुन सिपाही वापस चले गये। उन्होंने राजा को सारी बातें बतायीं। राजा ने तुरंत आदेश दिया कि पालकी लेकर जाओ और कहना कि उसे बहू के रूप में बुलाया गया है।

सिपाहियों ने राजा की आज्ञा के अनुसार जाकर सेठ की बहू से कहा–'राजा ने आपको बहू के रूप में आने के लिए पालकी भेजी है। बहू उसी समय पालकी में बैठकर राजसभा में जा पहुँची।

राजा ने बहू से पूछा–'तुम दूसरे पुरुषों को घर क्यों बुला लाई, जबकि तुम्हारा पति घर में नहीं है?'

बहू बोली–'महाराज! मैंने तो केवल कर्तव्य का पालन किया। प्यासे पथिक को पानी पिलाना कोई अपराध नहीं है। यह हर गृहिणी का कर्तव्य है। जब मैं कुएँ पर पानी भरने गई थी, तब तन पर मेरे कपड़े अजनबियों के सम्मुख उपस्थित होने के अनुरूप नहीं थे। इसी कारण उन राहगीरों को कुएँ पर पानी नहीं पिलाया। उन्हें बड़ी प्यास लगी थी और मैं उन्हें पानी पिलाना चाहती थी, इसलिए उनसे मैंने मुश्किल प्रश्न पूछे और जब वे उनका उत्तर नहीं दे पाये तो उन्हें घर बुला लाई। घर पहुँचकर ही उन्हें पानी पिलाना उचित था।

राजा को बहू की बात ठीक लगी। राजा को उन प्रश्नों के बारे में जानने की बड़ी उत्सुकता हुई, जो बहू ने चारों राहगीरों से पूछे थे। राजा ने सेठ की बहू से कहा–'भला, मैं भी तो सुनूँ कि वे कौन–से प्रश्न थे, जिनका उत्तर वे लोग नहीं दे पाए?'

बहू ने तब वे सभी प्रश्न दुहरा दिये। बहू के प्रश्न सुन राजा और सभासद चकित रह गये। फिर राजा ने उससे कहा–'तुम खुद ही इन प्रश्नों के उत्तर दो। हम अब तुमसे यह जानना चाहते हैं।'

बहू बोली–'महाराज! मेरी दृष्टि में पहले प्रश्न का उत्तर है कि संसार में सिर्फ दो ही यात्री हैं–सूर्य और चन्द्रमा। मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर है–बहू और गाय, इस पृथ्वी पर ऐसे दो प्राणी हैं, जो गरीब हैं। अब मैं तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनाती हूँ–'महाराज! हर इंसान के साथ हमेशा अनपढ़ गँवारों की तरह जो चलते रहते हैं, वे हैं–भोजन और पानी। चौथे आदमी ने कहा था कि वह मूर्ख है और जब मैंने उससे पूछा कि मूर्ख तो दो ही होते हैं, तुम उनमें से कौन–से मूर्ख हो, तो वह उत्तर नहीं दे पाया। इतना कहकर वह चुप हो गई।

राजा ने बड़े आश्चर्य से पूछा–'क्या तुम्हारी नजर में इस संसार में दो ही मूर्ख हैं?' बहू ने कहा–'हाँ महाराज! इस समय मेरी नजर में सिर्फ दो ही मूर्ख हैं?'

राजा ने कहा–'तुरंत बतलाओ कि वे दो मूर्ख कौन हैं?' इसपर बहू बोली–'महाराज! मेरी जान बख्श दी जाए तो मैं इसका उत्तर दूँ।' राजा को बड़ी उत्सुकता थी यह जानने की कि वे दो मूर्ख कौन हैं, सो उसने तुरंत बहू से कह दिया–'तुम निःसंकोच होकर कहो, हम वचन देते हैं कि तुम्हें कोई सजा नहीं दी जाएगी।

बहू बोली–'महाराज! मेरे सामने इस वक्त बस दो ही मूर्ख हैं। फिर अपने ससुर की ओर हाथ जोड़कर कहने लगी–पहले मूर्ख तो मेरे ससुरजी हैं, जो पूरी बात जाने बिना ही अपनी बहू की शिकायत राजदरबार में की। अगर इन्हें शक हुआ ही था तो यह पहले मुझसे पूछ तो लेते, मैं खुद ही इन्हें सारी बातें बता देती। इस तरह घर–परिवार की बेइज्जती तो नहीं होती। ससुर को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने बहु से क्षमा माँगी। बहू चुप रही।

राजा ने तब पूछा–'और दूसरा मूर्ख कौन है?' बहू ने कहा–'दूसरा मूर्ख खुद इस राज्य का राजा है, जिसने अपनी बहू की मान–मर्यादा का जरा भी ख्याल नहीं किया और बिना सोचे–समझे ही बहू को भरी राजसभा में बुलवा लिया।

बहू की बात सुनकर राजा पहले तो क्रोध से आग बबूला हो गया, परन्तु तभी सभी बातें उसकी समझ में आग गयीं। समझ में आने पर राजा ने बहू को उसकी समझदारी और चतुराई की सराहना करते हुए उसे ढेर सारे पुरस्कार देकर सम्मान सहित विदा किया।

ग़ज़लें

हो कोई भी हाल पर हर हाल होना चाहिए
आदमी की बात का इकबाल होना चाहिए
झूठ की छाती पे बेशक मूंग दलने के लिए
सत्य का ऊँचा हमेशा भाल होना चाहिए
न्यास नैसर्गिक हो इसके वास्ते सुन लो मियाँ
मछलियों के हाथ में भी जाल होना चाहिए
हक गरीबों का जो मारे जो करे जुल्म–ओ–सितम
दिल में उसके खौफ सर पे काल होना चाहिए
बस चुनावों के समय आते छलावे के लिए
उनको जिम्मेदार पाँचों साल होना चाहिए
योजनाओं का अमल होगा कभी मुश्किल नहीं
सत्य और निष्ठा का सुर लय ताल होना चाहिए
सल्तनत को नींद से फौरन जगाने के लिए
औघड़ों के हाथ में करताल होना चाहिए
एकता की बात जब लिखनी हो भारत भाल पर
हम सभी के खून का रंग लाल होना चाहिए।

सियासतदां कभी चोला नहीं एक सा पहनते हैं
कभी उजला कभी गेरुआ कभी नीला पहनते हैं
कभी मुस्कान होठों पर कभी आँखों में लाली भी
तमाशे के लिए तो छल कपट धोखा पहनते हैं
हनक सत्ता की जब फुफकारती डर जाते हैं हम सब
गले में हर समय वो साँप पोशीदा पहनते हैं
वो नारों को बिछाते और वादे ओढ़ लेते हैं
मुलम्मों को लबादा झूठ का चोला पहनते हैं
वो अभिवादन भी करते हैं तो बख्तरबंद गाड़ी से
किले से बोलना होता है तो शीशा पहनते हैं
मिले नोटों की गड्डी तो बदल लेते हैं वो पाला
जो अपने भाषणों में सत्य का तमगा पहनते हैं।
न जाने कब अमल में आएँ तेरी योजनाएँ सब
भरोसा है तभी हम मौन का लहजा पहनते हैं
भुने काजू संग व्हिस्की, उनको स्वाद क्या मालूम
बदन पर जो तुम्हारी पार्टी का झंडा पहनते हैं।

बहुत होने से भी कुछ भी यहाँ हासिल नहीं होता
अगर इंसान में इंसान जैसा दिल नहीं होता
वे रुतवा रौब माल–ओ–जर धरे रह जाते सबके सब
मियाँ सामान कम हो तो सफर मुश्किल नहीं होता
अगर मीज़ान पे बैठे हो गहरी नज़र रखना
लहू के छींटे होने से कोई कातिल नहीं होता
बहुत गहरा समंदर है सफर में नेकियाँ रखना
बदी की नाव का अक्सर कोई साहिल नहीं होता
जलाता कौन अपना दिल पिघलते मोम से यारो
अगरचे इश्क के अंजाम से गाफिल नहीं होता
खुदा की नेमतें होती हैं तो इक शेर होता है
कोई शायर किसी के हुस्न का बिस्मिल नहीं होता
मगर इक शेर जो हर बार उद्धृत आप करते हैं
न होता उनके गालों पर अगर वो तिल नहीं होता

ख्वाहिशों की बादलों से छन रहा हूँ
इक समुन्दर खुद के अंदर बन रहा हूँ
बेवजह खुशियाँ मुझे भाती नहीं है
आपके आगन का तुलसी बन रहा हूँ
खुद की लेता हूँ परीक्षा हर घड़ी मैं
लोग कहते खुद का ही दुश्मन रहा हूँ
कुछ ने आयत की हजारों तोहमतें पर
कुछ की खातिर खुशियों का सावन रहा हूँ
हर तरफ इच्छाओं की जलती चिता है
जीस्त औघड़ सी मिली निर्जन रहा हूँ
मुझपे चलना है नहीं आसान लेकिन
सत्य के पथिकों का सच्चा धन रहा हूँ
सच के परचम का है माथे पर गुमां और
सोचते हैं लोग कि मैं बन रहा हूँ
इश्क का दावा है सदियों से अभी तक
मैं ही काबा मैं ही वृन्दावन बन रहा हूँ
तुम फँसे हो काशी और मगहर में अबतक
मैं पिया से मिलने को बन ठन रहा हूँ।

अभिनव अरुण
बी 12, शीतल कुंज लेन 10
निरालानगर महमूरगंज
वाराणसी,
9415678748

लोकवाणी

सुसंभाव्य : सौंदर्यपूर्ण साहित्यिक अभिव्यक्ति

साहित्य अपने आप में एक समग्र विधा है, जिसमें कई मूलभूत तत्व समाहित होते हैं। साहित्य स्वयं में संपूर्ण है। इसमें वह सब कुछ है, जो मानव को न केवल सौंदर्य एवं संवेदना से सराबोर करता है, बल्कि उसे वैचारिक रूप से सुदृढ़ कर विकास का एक नया वातावरण विनिर्मित करता है। साहित्य अपने सभी जीवनीय तत्वों के साथ समग्रता की अभिव्यक्ति देता है, संपूर्ण रूप से संप्रेषित करता है। तभी तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। जहाँ संप्रेषण नहीं होता, जहाँ भावों एवं विचारों तथा संवेदना की अभिव्यक्ति नहीं होती है, वहाँ साहित्य नहीं होता है।

साहित्य एक महासागर है, जिसकी लहरों में सुगंध, भाव और सौंदर्य की चरम अनुभूति होती है, संगीत की स्वर लहरियाँ बिना प्रयास स्वतः बज उठती है, संवेदना की धाराएँ निरंतर बहती हैं और ये धाराएँ मिलकर अभिव्यक्ति का सघन रूप ले लेती हैं। मुर्दा होता है वह हृदय, जिसमें साहित्य नहीं होता। साहित्य–सागर में गोते लगाकर अनगिन दिव्य एवं बहुमूल्य रत्नों की प्राप्ति होती है, जिससे विकास यात्रा में सहायता मिलती है। साहित्य में कई तत्व समाहित हैं–भाव, भाषा, सौंदर्य, दर्शन एवं वातावरण। इनमें किसी तत्व की कमी साहित्य की संपूर्णता को खंडित करती है।

साहित्य में जीवन–दर्शन समाहित है, परन्तु साहित्य दर्शन नहीं है। साहित्य में सौंदर्य अभिमंडित होता है, भाषा प्रांजल एवं सहज होती है, परन्तु दर्शन में मात्र विचारों के उद्‌गार होते हैं। साहित्य हृदय के साथ मन के एकीकरण का विन्यास है, स्पंदन है। साहित्य सौंदर्य व संवेदना को स्पर्श करता है। साहित्य दर्शन को सौंदर्य संवेदना से सिक्त कर देता है। सौंदर्य के बिना आकर्षण संभव नहीं। जैसे सत्य का केवल सत्य होना ही पर्याप्त नहीं है, उसमें सौंदर्य की अभिव्यंजना भी होनी चाहिए, तभी वह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का उद्‌घोष कर सकता है। विभिन्न अलंकारों की अभिव्यंजना से साहित्य सँवरता है, आकर्षक बनता है। साहित्यकार साहित्य को सौंदर्य के उस उच्च स्थान पर आरूढ़ करता है, जहाँ पवित्रता, पावनता एवं दिव्यता का आधार प्रकाशित समाहित है। दुर्भाग्यवश वर्तमान साहित्य में सौंदर्य के स्थान पर फूहड़ता, अश्लीलता एवं उथलापन ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं।

भाषा व भाव साहित्य के प्राणतत्व होते हैं। भाव गहरा होता है, तो भाषा अपने आप परिमार्जित हो जाती है। भावों की गहराई में वाक्य विन्यास, शब्द विन्यास अपने आप बनते हैं। यदि भाव न हो तो भाषा कितनी भी अच्छी हो, उसमें प्राण नहीं होता, वह प्रभावकारी नहीं हो पाती। जब कोई कवि तथा साहित्यकार अपनी संवेदना की चरम सीमा पर होता है, तो काव्य प्रस्फुटित होने लगता है। विश्व का प्रथम काव्य इसी संवेदना की सघनता में रचा गया। जब महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी की हृदयबेधी वेदना को अपने अंदर अनुभव किया, तो रामायण महाकाव्य का सृजन हुआ। भावनाएँ जब शब्द का आकार लेती हैं, तो भाषा रूप प्रकट होती हैं।

साहित्य अपने सभी तत्वों के साथ मिलकर एक ऐसा ही वातावरण निर्मित करता है, जिसके संपर्क और सान्निध्य से लोग पुलकित व प्रसन्न होते हैं साहित्य में साहित्यकार की चेतना बसती है, जो वातावरण को दिव्य व पावन बनाती है। श्रेष्ठ साहित्य से जीवन विकसित होता है एवं समाज सभ्य एवं समृद्ध होता है। जीवन मूल्यों के ह्रास तथा सामाजिक कर्तव्यों की अवहेलना आज प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। विद्या का तात्पर्य सुसंस्कारिता से है। वर्तमान में शिक्षा व शिक्षण–पद्धति एकांगी है। अनुशासन हीनता, चरित्रपतन, नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन–मूल्यों का पतन आज जीवन के हर क्षेत्र में स्पष्टतः देखा जात है। ऐसे में साहित्य जीवन का शृंगार है,उपहार है। आज बाहरी समृद्धि ने व्यक्ति को भीतर से खोखला कर दिया है।

भौतिकवादी चकाचौंध एवं कृत्रिम जीवन–यापन के अप्राकृतिक माहौल में जहाँ चतुर्दिक लाभ, लोभ, स्वार्थ और मतलब का फरेबी ताना–बाना पसरा हुआ है, स्वकेन्द्रित मानसिकता एवं छल–छद्‌म, झूठ–प्रपंच, पग–पग पर धोखा–अविश्वास का माहौल व्याप्त है, ईमानदारी एवं सच्चरित्रता का नामोनिशान तक नहीं दिखता, जीवन–मूल्य तथा नैतिक बोध के संग हृदय की कोमल संवेदनाएँ छीज कर कराह रही हैं–ऐसी विकट परिस्थितियों एवं जटिल प्रतिकूलताओं के बीच साहित्य सेवा तथा जीवन मूल्यों का सृजन अत्यंत दुरूह कार्य है। सकारात्मक पक्ष तो यह है कि शिक्षाविद् होने के नाते दयानंद जायसवाल एक विशेष ध्येय से जुड़े हैं, न कि लोगों से या चीजों से। दूसरों की परवाह न करते हुए वही कर रहे हैं, जो उनका अंतर्मन कहता है। किसी के कुछ कहने के डर से अपने सपनों को पूरा करने की दिशा में कोई प्रयास ही न करना अंततः हमें थका डालता है। कुछ तो लोग कहेंगे–लोगों का काम है कहना। समाज को समुचित दशा–दिशा और भूले–भटके को मार्गदर्शन करनेवाला एक सार्थक प्रयास कभी बूढ़ा नहीं होता। कलह तथा दिखावे के इस पतनशील युग में जहाँ अधर्म ही प्रमुख है–सामाजिक जड़ता और संबंधों में संवेदनहीनता को जड़–मूल से उखाड़ने का भगीरथ प्रयास निःसंदेह काबिल–ए–तारीफ है। साहित्यिक चिंतन में सभी कुछ है, परन्तु सबके लिए सबकुछ नहीं है। चित्त की अवस्था के अनुरूप ही वस्तु एवं भाव की अनुभूति होती है। प्रसिद्ध शायर वशीर अहमद 'बद्र' ने क्या खूब कहा है–'हम तो अकेले ही चले थे सफर में। लोग मिलते गये और कारवां बनता गया।' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है–'एकला चलो रे।' जो बैशाखी बन जाए, वह दुश्मन है, सदा के लिए लंगड़ा कर देगा। निर्भरता गुलामी है। समय का इंतजार क्यों?समय भी कभी किसी का इंतजार नहीं करता। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सुंदर है, सत्य है–वह मुक्त ही होता है, उसे बाँधा नहीं जा सकता। श्रीदयानंदजी इतने छोटे–से चम्मव से इतना विराट सागर नापने का जो अथक प्रयास कर रहे हैं, वह इतिहास में सदा दर्ज रहेगा। वक्त की जरूरत है और परिस्थितियों की माँग है कि रचनाधर्मिता को कायम रखकर समाज को आत्मा के प्रकाश से सदा आलोकित करने की दिशा में सकारात्मक एवं सार्थक कोशिशें की जाएँ। दुष्यन्त के शब्दों में–मेरे सीने में न सही, तेरे सीने में ही सही हो कहीं भी आग, ये आग जलनी चाहिए।

–सुभाषचन्द्र झा, बिहार प्रशासनिक सेवा,
सरकार के विशेष सचिव, क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर– 812002
मो0–9431208428

आलेख

जल है तो कल है

शंकर लाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
पो.–आगूंचा, जिला भीलवाड़ा

पानी बचाया जा सकता है, बनाया नहीं जा सकता है। दादाजी ने नदी में पानी देखा, पिताजी ने कुएँ में, हमने नल में देखा और बच्चों ने बोतल में। अब उनके बच्चे कहाँ देखेंगे?जरूर विचार करें एवं पानी को व्यर्थ नष्ट न होने दें। दिनोंदिन पानी की घटती उपलब्धता निरंतर उसका बढ़ता हुआ अभाव और जल स्रोतों की निर्ममतापूर्वक तथा धंधे वालों को कुत्सित जल व्यवसाय और सर्वसुलभ जल स्रोतों के मिट जाने से जो जल संकट उत्पन्न हुआ है, इससे तो लगता है कि अब वह दिन दूर नहीं है, जब आखिरी विश्वयुद्ध पानी के लिए ही होगा।

जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान निधि पानी ही है। मानव शरीर में लगभग 75 प्रतिशत पानी होता है, अतः पानी के अभाव में जीना भी दूभर हो जाता है। मानव शरीर पंच तत्वों से निर्मित है। धरती, जल, अग्नि, गगन और वायु इन पाँच तत्वों में जल की अनिवार्यता प्रत्येक प्राणी को होती है। इसके अभाव में अधिक समय जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि कहा गया है कि धरती का एक तिहाई भाग पानी है, किन्तु इसका एक प्रतिशत का उपयोग हो पाता है। जल भंडार का 97 प्रतिशत पानी समुद्रों में खाने पानी के रूप में है। 2.67 प्रतिशत पानी पर्वतीय क्षेत्र में बर्फ के रूप में सगृहीत है। केवल 0.33 प्रतिशत जल ही भूमिगत जल के रूप में होने से जल संकट बना हुआ है। बढ़ती जनसंख्या और घटते जल स्रोतों के कारण प्राणिमात्र का जीवन दूभर बन गया है। देश में जितने भी औद्योगिक संस्थान हैं, उन सबका दूषित पानी नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे भी पानी की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। इसी कारण आज गंगा भी मैली हैं जल की आपूर्ति दिनोंदिन घटती जा रही है।

प्राणिमात्र को जीवित रहने के लिए जितना भोजन की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक पानी उसके लिए अनिवार्य है। आज प्रकृति प्रदत्त पानी दुर्लभ हो गया है। प्राचीनकाल में पानी को पैसा नहीं पुण्य कमाने का माध्यम माना जाता था। तभी तो कहा गया है कि–

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानुस चून।।

पानी की विशिष्टता का उल्लेख हमारे धर्मग्रंथों में भी हुआ है।

बृहस्पति स्मृति–जो एक दिन पानी रोकता है, उसकी अगली और पिछली पीढ़ी पुण्य प्राप्त करती है।

श्रीरामचरितमानस–जल हि मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। तरसि गये मुनि रहहिं सुखाहीं।।

गुरुगंथ साहिब–धरती माँ है, नदियाँ धमनियाँ हैं और जंगल फेफड़े हैं।

कुरान शरीफ–पानी खुदा की रहमत है, इसका टूटना विनाश के बराबर है।

मुस्लिम धर्मावलंबियों की मान्यता है कि आदमी को खुदा के घर में मरने पर पानी के खर्च का हिसाब देना होगा।

संस्कृत में जल को जीवन कहा गया है। जल के बिना जीवन नहीं, इसलिए 'जल ही जीवन है' की उक्ति का प्रचलन है। वैदिक ऋचाओं में उल्लेख है कि पृथ्वी से जल प्राप्त हो, औषधियों अर्थात् वनस्पतियों से जल प्राप्त हो, दिव्यता से भरे हुए अंतरिक्ष से जल प्राप्त हो और हमारे लिये दिशाएँ भी जल उपलब्ध कराती रहे। इस प्रकार हमारे धर्मग्रंथों में जल की विशेष महिमा वर्णित है। प्रसिद्ध वैदिक मंत्र 'ओम् अग्निर्देवता, मरुतोदेवता, वरुणोदेवता कहा गया है। इसका तात्पर्य जल हमारे लिए देवतुल्य है। देवार्चनों के आह्वान के पश्चात् जलम् समर्पयामि का विधान है। पैगम्बर इस्लाम हजरत मोहम्मद साहब ने भी यही कहा है कि पानी अफजल सद्का (दान न्योछावर) है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि जल सभी प्राणियों के लिए मधुरूप है। जल ही औषधि है,जल रोगों का शत्रु है। यही सब रोगों का विनाश करता है। जल अत्यन्त आरोग्यप्रद एवं बलदायक है। अथर्ववेद में तो इतना कहा गया है कि–'जल में अमृत है तथा जल में औषधियाँ हैं।

जल की उपादेयता को वर्णित करतजे हुए कहा गया है कि अजीर्ण होने पर जल औषधि है, पच जाने पर जल बल देता है, भोजन के समय जल अमृत के समान है। भोज के अंत में विष का फल देता है। वस्तुतः आज ही इस विषम परिस्थिति में जल संकट से मुक्ति पाने के लिए प्रत्येक देशवासी को चिंतन करना होगा कि हम इस संकट से कैसे छुटकारा प्राप्त करें आज के इस भौतिकवादी दौर में हमने प्रकृति का भरपूर दोहन किया है। उसका अस्तित्व ही चरमरा गया है। नदियों पर बाँध बनाकर उनका मार्ग अवरुद्ध करते हुए, वनों की अंधाधुंध कटाई तथा चौड़ी सड़कों के निर्माण, समुद्रों में आणविक परीक्षण, कल– कारखानों के अनगिनत निर्माण, दैनिक उपयोग हेतु पानी आवश्यक दुरुपयोग तथा प्राचीन जल स्रोतों में अवरोध उत्पन्न कर जो जल संकट उत्पन्न किया है, उसपर गंभीरता से विचार करते हुए समाधान की आवश्यकता है।

जिस तरह हम पाई–पाई को जोड़कर अपनी धन–संपदा को बढ़ाने के लिए तत्पर रहते हैं, उसी तरह जल की बूँद–बूँद बचानी होगी। इसकी हर एक बूँद में जीवन स्पंदन छिपा हुआ है। प्रायः इन दिनों देखा गया है कि पानी के लिए परस्पर लड़ाई– झगड़े होते रहते हैं। मारपीट तक की स्थिति बन जाती है। कहा जाता है कि अब अगला युद्ध तो पानी के लिए ही होगा। जल हमारे लिए औषध के रूप में भी प्रयुक्त होता है। इसमें प्राण तत्व समाहित है। अतः इसे अमृत के समतुल्य मान्यता प्रदान की गई है। जीवन में पानी की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए लोकजीवन में पानी से सम्बद्ध कई कहावतों और मुहावरों का भी प्रचलन हो गया है। जो पानी की अनिवार्यता को घोषित करती है। पानी आना, पानी–पानी होना, पानी में रहकर मगर से बैर करना, चुल्लू भर पानी में डूब मरना, आँखों को सूख जाना आदि।

वस्तुतः पानी की अनिवार्यता प्रत्येक दृष्टि से महसूस की जाती रही है। अतः पेयजल की सुरक्षा अतिआवश्यक है। प्राचीनकाल से ही सामाजिक व्यवस्था इस ढंग से निरूपित की गई थी कि पेयजल साफ–सुथरा रहे और यह सुरक्षित बना रहे। इसलिए कुएँ, बावड़ी, पनघट और तालाबों के निर्माण की व्यवस्था की गई है। पानी के अभाव के कारण घरों में टांके बनाकर पानी को

संगृहीत किया जाता है, जो आवश्यक है। अत: आवश्यकता है–

- गंदे नालों का पानी जो नदियों के पानी को प्रदूषित करता है, उसको नियंत्रित किया जाए।
- शिक्षाक्रम से सम्बद्ध पाठ्यक्रम में जल की उपयोगिता संबंधी जानकारी अनिवार्यत: दी जाए
- जनप्रतिनिधियों को जल संरक्षण हेतु उत्प्रेरित किया जाये।
- सार्वजनिक सेवा संस्थानों द्वारा जल संरक्षण का अभियान चलाया जाना चाहिए।
- नहरों को सीमेंटेड बनाया जाये ,ताकि जल की अनावश्यक बर्बादी न हो।
- रेतीले क्षेत्रों में सीमेंटेड कुएँ बनाये जाए, ताकि वर्षा का पानी संगृहीत हो सके।
- जल वितरण संस्थानों की लापरवाही से नष्ट होनेवाले पानी की रोकथाम हेतु नदियों को जोड़ा जाना आवश्यक है।
- खेतों में चारों तरफ की सीमाओं को मजबूत दीवारों से प्रतिबंधित किया जाए।
- खेतों के पास जहाँ पानी व्यर्थ बहता है, उसे नालियों का निर्माण कर खेतों में पहुँचाया जाए।
- पेड़ों का अंधाधुंध कटाई को बंद किया जाए।
- पहाड़ों की तलहटी में जलाशयों का निर्माण किया जाए।
- व्यक्तिगत स्तर पर काम में आनेवाला पानी व्यर्थ नष्ट न हो, इसपर ध्यान दिया जाए।
- जल संग्रह के समस्त स्रोतों का पुनरुद्धार हो।
- कृषि कार्य के लिए बूँद–बूँद पानी वाली सिंचाई विधि को बढ़ावा दिया जाए।
- पर्यावरण को प्रदूषण रहित किया जाए।
- जल स्रोतों को मल–मूत्र, कूड़ा–कचरा तथा जहरीले पदार्थों से बचाया जाए।
- पूजा स्थलों पर पूजा–अर्चना के बाद प्रदूषित सामग्री को नदियों में प्रवाहित करने पर रोक लगाई जाए।

भूजल बोर्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2013 में पिछले एक दशक की तुलना में 56 प्रतिशत कुओं के जलस्तर में गिरावट आई है। जो आज तो अधिक बढ़ गई है। माना जाता है कि पानी के संबंध में हमारी सोच और समझ में वांछित परिवर्तन नहीं हुआ तो समूचे विश्वस्तर पर आगामी 15 वर्षों में पानी आवश्यकता के मुकाबले में 40 प्रतिशत कम हो जाएगा। जल संकट से खाद्यान्न समस्या भी विकराल रूप धारण कर लेगी। अत: यह विचारणीय है कि देशवासी जलसंकट की इस समस्या पर गंभीरता से विचार करते हुए बूँद–बूँद पानी की बचत करें, अन्यथा भारी संकट का सामना करना होगा। प्रत्येक नागरिक को यह सोचना चाहिए–'जल है तो कल है।'

लघुकथा

गरीब

डॉ. पंकज साहा
झपाटापुर, खड़गपुर
मो.–9434894190

इन दिनों एक शब्द मुझे बहुत परेशान कर रहा है। वह है –'गरीब'। न–न, आप गलत मत समझिए। मुझे गरीबों की फिक्र नहीं। मैं सिर्फ इसके अर्थ को लेकर परेशान हू। मैं सोच रहा हूँ कि आज गरीब कौन है, क्योंकि जिस गरीब की पूँछ उठाता हूँ, एक मोबाईल पाता हूँ। बी.पी.एल. कार्डधारी एक पड़ोसी को जब बाइक से अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम स्कूल छोड़ने जाते देखता हूँ, तो सोचता हूँ कि उसकी गरीबी मेरी गरीबी से अधिक कैसे?मैं एक गरीब शिक्षक हूँ। आज शिक्षकों को वेतन कम नहीं है। पर सच बताऊँ अगर कोई अतिरिक्ति कमाई जैसे–ट्यूशन–व्यूशन वगैरह न हो तो आज के युग में तीन बच्चों के साथ एक शिक्षक ठाठ– बाट से नहीं रह सकता।

मेरी धर्मपत्नी बहुत दिनों से एक नौकरानी की माँग कर रही थी। उसकी माँग जायज थी, अपनी अपनी औकात के मद्देनजर इसे मैं हमेशा एक 'लग्जरी आइटम' मानता रहा, परन्तु अंतत: पति–धर्म का पालन करते हुए मैंने एक नौकरानी रखने का मन बना लिया।

एक ऐजेंसी से संपर्क किया। दूसरे दिन सुबह–सुबह एक महिला हाजिर। उसकी वेश–भूषा एवं स्टाइल, एक हाथ में वैनिटी वैग, दूसरे में मोबाईल देखकर पहले तो मैं समझा कि कोई सेल्स गर्ल है या किसी का पता पूछने आयी है।

उसने आते ही कहा, 'महीने का दो हजार लूँगी। सप्ताह में एक दिन हाफ डे। पर्व किसी धर्म का हो, उस दिन छुट्टी। बीमारी की छुट्टी अलग। छुट्टियों का वेतन काटने नहीं माँगता और हाँ, घर के अंदर सी.सी. टी.वी कैमरा होने को नहीं माँगता।

उसी माँग और शर्तों को सुनकर मेरे तो होश उड़ गये, पर पत्नी की आँखों में एक कातर आग्रह देख मैं हथियार डालना चाह ही रहा था कि उसने एक बम फोड़ दिया–'एक बात पहले यह बता देती हूँ कि कभी रंगे हाथ पकड़ लिया तो हल्ला–गुल्ला मचाने का नहीं।

हमार यूनियन बहुत तगड़ा, हल्ला–गुल्ला किया तो हमारा यूनियन वाला तुम्हारे यहाँ इतना तोड़–फोड़ करेगा कि सारी जिंदगी हल्ला–गुल्ला करना भूल जाएगा। अब जल्दी बताओ, मंजूर?मेरे पास टाइम खोटा करने का समय नहीं।

मैंने पत्नी की ओर देखा। उसकी कातरता कपूर की तरह गायब हो चुकी थी और उसकी जगह दृढ़ निश्चयता झाँकने लगी थी। अचानक उसने जोर से दरवाजा बंद कर दिया।

एक हेडेक दूर हुआ, पर 'गरीब' शब्द का अर्थ मेरे सिर पर फिर नाचने लगा। उर्दू में गरीब को 'मुफलिस' कहते हैं, पर कुछ उर्दू शायरों ने 'अकेला' के अर्थ में भी 'मुफलिस' शब्द का प्रयोग किया है। एक प्रसिद्ध उक्ति है–'संघे शक्ति कलियुगे।' अर्थात् कलियुग में बिना संघ (यूनियन) वाले निर्बल हैं, अकेले हैं, मुफलिस हैं। अचानक मुझे यह इल्हाम हुआ कि आज के युग में जो किसी यूनियन से जुड़ा नहीं है, वही सबसे बड़ा गरीब है।

आलेख

लोकचेतना में स्वाधीनता की लय

आकांक्षा यादव
टाइप 5, निदेशक बंगला
पोस्टल आफिसर्स कॉलोनी, जोधपुर
राजस्थान मो.–9413666599

स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। आजादी का अर्थ सिर्फ राजनैतिक आजादी नहीं, अपितु यह एक विस्तृत अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति से लेकर राष्ट्र का हित वह उसकी परंपराएँ छिपी हुई हैं। कभी सोने की चिड़िया कहे जानेवाले भारत राष्ट्र को भी पराधीनता के दौर से गुजरना पड़ा। पर पराधीनता का यह जाल लंबे समय तक बाँध नहीं पाया और राष्ट्रभक्तों की बदौलत हम पुनः स्वतंत्र हो गये। स्वतंत्रता रूपी यह क्रान्ति करवटें लेती हुई लोकचेतना के उत्ताल तरंगों से आप्लावित हैं। यह तो महात्मा गाँधी ने असे अपूर्व विस्तार दिया। एक तरफ सत्याग्रह की लाठी और दूसरी तरफ भगत सिंह व आजाद जैसे क्रांतिकारियों द्वारा पराधीनता के खिलाफ दिया गया इन्कलाब का अमोघ अस्त्र अंग्रेजों की हिंसा पर भारी पड़ी और अंततः 15 अगस्त, 1947 के सूर्योदय ने अपनी कोमल रश्मियों से एक नये स्वाधीन भारत का स्वागत किया।

इतिहास अपनी गाथा खुद कहता है। सिर्फ पन्नों पर नहीं, बल्कि लोकमानस के कंठ में, गीतों और किंवदन्तियों इत्यादि के माध्यम से यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होता रहता। तभी तो कहा जाता है कि किसी भी देश या समाज की संस्कृति, सभ्यता को जानने के लिए सबसे पहले उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना जरूरी है। लोक साहित्य में जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति होती है और यह भावव्यंजना लोकमंगलकारी होती है। कहते हैं कि लोक–साहित्य, लोकपर्व, लोकगीत कभी पुराने नहीं पड़ते। सैकड़ों वर्षों के बाद भी हमेशा तरोताजा लगते हैं। वैसे भी इतिहास की वही लिपिबद्धता सार्थक और शाश्वत होती है, जो बीते हुए कल को उपलब्ध साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार पर यथावत् प्रस्तुत करती है। जरूरत है कि इतिहास की उन गाथाओं को भी समेटा जाए, जो मौखिक रूप में जन–जीवन में विद्यमान है, तभी ऐतिहासिक घटनाओं का सार्थक विश्लेषण हो सकेगा। लोकलय की आत्मा में मस्ती और उत्साह की सुगंध है, तो पीड़ा का स्वाभाविक शब्द स्वर भी। कहा जाता है कि पूरे देश में एक ही दिन 31 मई, 1857 को क्रांति का आरंभ करने का निश्चय किया गया था, पर 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर छावनी के सिपाही मंगल पांडे की शहादत से उठी ज्वाला वक्त का इंतजार नहीं कर सकी और प्रथम स्वाधीनता संग्राम का आगाज हो गया। मंगल पांडे के बलिदान का दास्तां को लोकचेतना में यूँ व्यक्त किया गया है–

जब सत्तावनि की रारि भइल, वीरन के वीर पुकार भइल
बलिया के मंगल पांडे के, बलिवेदी से ललकार भइल
मंगल मस्ती में चूर चलल, पहिला बागी मसहूर चलल
गोरनि का पलटनि के आगे, बलिया के बाँका सूर चलल।

कहा जाता है कि 1857 की क्रांति की जनता को भावी सूचना देने हेतु और उनमें सोयी चेतना को जगाने हेतु 'कमल' और 'चपाती' जैसे लोकजीवन के प्रतीकों को संदेशवाहक बनाकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भेजा गया। यह कालिदास के मेघदूत की तरह अतिरंजना नहीं, अपितु एक सच्चाई थी। क्रांति का प्रतीक रहे 'कमल' और 'चपाती' का भी अपना रोचक इतिहास है। किंवदन्तियों के अनुसार एक बार नाना साहब पेशवा की भेंट पंजाब के सूफी फकीर दस्सा बाबा से हुई। दस्सा बाबा ने तीन शर्तों के आधार पर सहयोग की बात कही–सब जगह क्रांति एक साथ हो, क्रान्ति रात में आरंभ हो और अंग्रेजों की महिलाओं और व बच्चों का कत्ले आम न किया जाए। नाना साहब की हामी पर अलौकिक शक्तियों वाले दस्सा बाबा ने उन्हें अभिमंत्रित कमल के बीज दिये और कहा कि इनका चूरा मिली आटा में चपातियाँ जहाँ–जहाँ वितरित की जाएगी, वह क्षेत्र विजित हो जाएगा। फिर क्या था, गाँव–गाँव तक क्रान्ति संदेश फैलाने के लिए चपातियाँ भेजी गयीं। कमल को तो भारतीय परंपरा में शुभ माना जाता है, पर चपातियों को भेजा जाना सदैव से अंग्रेज अफसरों के लिए रहस्य बना रहा। वैसे भी चपातियों का संबंध मानव के भरण–पोषण से है। वी.डी. सावरकर ने एक जगह लिखा है–''हिन्दुस्तान में जब भी क्रांति का मंगल कार्य हुआ, तब ही क्रान्ति–दूतों चपातियों द्वारा देश के एक छोर से दूसरी छोर इस पावन संदेश को पहुँचाने के लिए इसी प्रकार का अभियान चलाया गया था; क्योंकि वेल्लोर के विद्रोह के समय में भी ऐसी ही चपातियों ने सक्रिय योगदान दिया था।'' चपाती (रोटी) की महत्ता मौलवी इस्माईल मेरठी की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है–

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रहकर
तो वह खौफो जिल्लत के हलवे से बेहतर
जो टूटी हुई झोंपड़ी से जरर हो
भली उस महल से जहाँ कुछ खतर हो।

1857 की क्रान्ति वास्तव में जनमानस की क्रान्ति थी, तभी तो इसकी अनुगूंज लोक साहित्य में भी सुनायी पड़ती है। भारतीय स्वाधीनता का संग्राम सिर्फ व्यक्तियों द्वारा नहीं जड़ गया, बल्कि कवियों और लोक गायकों ने भी लोगों को प्रेरित करने में प्रमुख भूमिका निभायी। भोजपुरी में गाये जानेवाले 'चैता' में देशभक्ति का ज्वार यूँ फूटा–

राम किया लड़ि मरबि या मारबि फिरंगिया ए रामा
जीतबि या अपना जानवाँ गँवाइबि ऐ राम।

लोगों को इस संग्राम में शामिल होने हेतु प्रकट भाव को लोकगीतों में इस प्रकार व्यक्त किया गया–

गाँव–गाँव में डुग्गी बाजल, बाबू के फिरल दुहाई
लोहा चबवाई के नेवता बा, सब जन आपन दल बदल
बा जन गँवकइ के नेवता, चूड़ी फोड़वाई के नेवता
सिंदूर पोंछवाई के नेवता बा, रांड कहवार के नेवता।

राजस्थान के राष्ट्रवादी कवि शंकरदान सामोर ने मुखरता के साथ अंग्रेजी की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ देने का आह्वान किया–

आयौ औसर आज, प्रजा परब पूरण पालन
आयौ औसर आज, गरब गोरां रौ गालण
आयौ औसर आज, रीत राखण हिंदवाणी
आयौ औसर आज, विकट रण खाग बजाणी
फाल हिरण चुक्या फटक, पाछो फाल न पावसी
आजाद हिन्द करवा अवर, औसर इस्यौ न आवसी।

1857 की लड़ाई आर–पार की लड़ाई थी। हर कोई चाहता था कि वह इस संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध जमकर लड़े। यहाँ तक कि ऐसे नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने लोकगीत के माध्यम से व्यंग्य कसते हुए प्रेरित किया–

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहू
मरद से बनिके लुगइया आए हरि
पहिरि के साड़ी, चूड़ी, मुँहवा छिपाई लेहु
राखि लेई तोहरी पगरइया आए हरि।

1857 की जनक्रांति का गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने भी बड़ा जीवन्त वर्णन किया है। उनकी कविता पढ़कर मानो 1857 चित्रपट की भाँति आँखों के सामने छा जाता है–

सम्राट बहादुरशाह जफर, फिर आशाओं के केन्द्र बने
सेनानी निकले गाँव–गाँव, सरदार अनेक नरेन्द्र बने
लोहा इस भाँति लिया सबने, रंग फीका हुआ फिरंगी का
हिन्दू–मुस्लिम हो गये एक, रह गया न नाम दुरंगी का
अपमानित सैनिक मैरठ के, फिर स्वाभिमान से भड़क उठे
घनघोर बादलों से गरजे, बिजली बन–बनकर कड़क उठे
हर तरफ क्रान्ति उठे,
हर तरफ क्रान्ति ज्वाला दहकी, हर ओर भोर था जोरों का
पुतला बचने पाये न कहीं पर, भारत में अब गोरों का।

1857 की क्रान्ति की गूँज दिल्ली से दूर पूर्वी–उत्तर प्रदेश के इलाकों में भी सुनायी दी थी। वैसे भी उस समय तक अंग्रेजी फौज में ज्यादातर सैनिक इन्हीं क्षेत्रों के थे। स्वतंत्रता की गाथाओं में इतिहास प्रसिद्ध चौरीचौरा की डुमरी रियासत बंधू सिंह का नाम लिया जाता है, जो कि 1857 की क्रांति के दौरान अंग्रेजों का सरकलम करके और चौरीचौरा के समीप स्थित कुसमी के जंगल में अवस्थित तरकुलहा देवी के स्थान पर इसे चढ़ा देते। कहा जाता है कि एक गद्दार के चलते अंग्रेजों के गिरफ्त में आये बंधू सिंह को जब फाँसी दी जा रही थी, तो सात बार फाँसी का फंदा ही टूटता रहा। यही नहीं जब फाँसी के फंदे से उन्होंने दम तोड़ दिया तो उस पेड़ से रक्तस्राव होने लगा–
जहाँ बैठकर वे देवी से अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की शक्ति माँगते थे। पूर्वांचल में अभी यह पेत्थियाँ सुनाई जाती हैं–

गोरवन के अकिल गईल चकराय
असमय पड़ल माई गाढ़े में परनवा
अपने ही गोदिया में माई लेतु सुलाय
बद भइल बोली रुकि गइली संसिया
नीर गोदी में बहाते, लेके बेटा के लशिया।

भारत को कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था, पर अंग्रेजी राज ने हमारी सभ्यता व संस्कृति पर घोर प्रहार किये और यहाँ की अर्थव्यवस्था को भी दयनीय अवस्था में पहुँचा दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया है–

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो
बके पहिले जो रूप–रंग रस भीनो
सबे पहिले विद्याफल निज गहि लीनो
अब सबके पीछे सोई परत लखाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

आखिर तभी तो अंग्रेजी शासन में व्याप्त दुर्दशा व अत्याचार के विरुद्ध पंजाबी लोककवियों ने फतवा दिया–

रब्बा गोया देवते भज गए राज फिरंगिया दा
देखो टुर पए गिलट दे आने राज फिरंगिया दा
सिर उत्ते टोकरा नरंगिया दा, कदों जावेगा राज फिरंगिया दा।

आजादी की सौगात भीख में नहीं मिलती, बल्कि उसे छीनना पड़ता है। इसके लिए जरूरी है कि समाज में कुछ नायक आगे आयें और शेष समाज उसका अनुसरण करें। ऐसे नायकों की चर्चा गाँव–गाँव की चौपालों पर देखी जा सकती थी। बिरसा मुंडा के बारे में प्रचलित एक मुंडारी लोकगीत के शब्द देखें–

तमाड़ परगना गेरडे अली हातु
बिरसा भोगवान ऐ जानोम लेगा
आटा–माटा बिरको तला चलेकर रे दो
चले कद हतु रे उलगुलान लेदा।

गुरिल्ला शैली के कारण फिरंगियों में दहशत और आतंक का पर्याय बन क्रांति की ज्वाला भड़काने वाले तात्या टोपे से अंग्रेजी रूह भी कांपती थी, फिर उनका गुणगान क्यों न हो। राजस्थानी कवि शंकरदान सामौर तात्या की महिमा 'हिन्द नायक' के रूप में गाते हैं–

जतै गयौ जंग जीतियो, खटकै बिन रण खेत
तकड़ौ लडियाँ तांतियो हिन्द थान रै हेत
मचायो हिन्द में आखी, तहल को तांतियो मोटो
धोम जेम घुमायो लंक में हणूं घोर
रचाओ ऊजली राजपूती रो आखरी रंग
जंग में दिखायो सूवायो अथम जोर।

इसी प्रकार शंकरपुर के राना बेनीमाधव सिंह की वीरता को भी लोकगीतों में चित्रित किया गया है–

राजा बहादुर सिपाही अवध में, धूम मचाई मोरे राम रे
लिख लिख चिठिया लाट ने भेजा, आब मिलो राना भाई रे
जंगी खिलत लंदन से मंगा दूं, अवध में सूबा बनाई रे।

1857 की क्रान्ति में जिस मनोयोग से पुरुष नायकों ने भाग लिया, महिलाएँ भी उनसे पीछे न रहीं। लखनऊ में बेगम हजरत महल तो झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई ने इस क्रांति की अगुवाई की। बेगम हजरत महल ने लखनऊ की हार के बाद अवध के ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर क्रांति की चिनगारी फैलाने का कार्य किया–

मजा हजरत ने नहीं पाई, केसर बाग लगाई
कलकत्ते से चला फिरंगी, तंबू कनात लगाई
पार उतरि लखनऊ का, आयो डेरा दिहिस लगाई
आसपास लखनऊ का घेरा, सड़कन तोप धराई।

रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी वीरता से अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये। उनकी मौत पर जनरल ह्यूरोज ने कहा था कि–यहाँ वह औरत सायी हुई है, जो विद्रोही में एकमात्र दर्द थी।' झाँसी की रानी नामक अपनी कविता में सुभद्राकुमारी चौहान 1857 की उनकी वीरता का बखान करती है, पर उनसे पहले ही बुंदेलखंड की वादियों में दूर–दूर तक लोक लय सुनाई देती है–

खूब लड़ी मरदानी, अरे झाँसी वारी रानी
पुरजन पुरजन तोपें लगा दई, गोला चलाए असमानी
अरे झाँसी वारी रानी, खूब लड़ी मरदानी
सबरे सिपाइन को पैरा जलेबी, अपन चलाई गुरधानी
छोड़ मोरचा जसकर कों दौरी, ढूढेहूँ मिले नहीं पानी
अरे झाँसी वारी रानी, खूब लड़ी मरदानी।

1857 की क्रान्ति में शाहाबाद के 80 वर्षीय कुँअर सिंह को दानापुर के विद्रोही सैनिकों द्वारा 27 जुलाई को आरा शहर पर कब्जा करने के बाद नेतृत्व की बागडोर सौंपी गयी। बिहार और पूर्वी उत्तरप्रदेश के तमाम अंचलों में शेर बाबू कुँअर सिंह ने घूम–घूमकर 1857 की क्रांति की अलख जगायी। आज भी इस क्षेत्र में कुँअर सिंह को लेकर तमाम किंवदन्तियाँ मौजूद हैं। इस क्षेत्र के अधिकतर लोकगीतों में जनाकांक्षाओं को असली रूप देने का श्रेय बाबू कुँअर सिंह को दिया गया है–

बक्सर से जो चले कुँअर सिंह पटना आकर टीक
पटना के मजिस्टर बोले करो कुँअर को ठीक
अतुना बात जब सुने कुँअर सिंह दी बंगला फुँकवाई
गली–गली मजिस्टर रोये लाट गये घबराई।

1857 की क्रान्ति के दौरान ज्यों–ज्यों लोगों को अंग्रेजों की पराजय का समाचार मिलता, वे खुशी से झूम उठते। अजेय समझे जानेवाले अंग्रेजों का यह हश्र, उस क्रान्ति के साक्षी कवि सखवत राय ने यूँ पेश किया है–

गिद्ध मेडराइ स्वान स्या आनंद छाये
कहीं गिरे गोरा कहीं हाथी बिना सूंड कें

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने अंग्रेजी हुकूमत को हिलाकर रख दिया। बौखलाकर अंग्रेजी हुकूमत ने लोगों को फाँसी दी, पेड़ों पर समूहों में लटकाकर मृत्यु दंड दिया और तोपों से बाँधकर दागा–

झूलि गइलें अमिली के डरियाँ,बजरिया गोपीगंज कई रहलि।

वहीं जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें कालापानी की सजा दे दी। तभी तो अपने पति को कालापानी भेजे जाने पर एक महिला 'कजरी' के बोलों में कहती है–

अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियाँ रे हरी
सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा
नागर नैया जाला काले पनियाँ रे हरी
घरवा में रोवै नागर माई और बहिनियाँ रामा
से जिया पै रोवे बारी धनिया रे हरी।

बंगाल विभाजन के दौरान स्वदेशी–बहिष्कार–प्रतिरोध का नारा खूब चला। अंग्रेजी कपड़ों की होली जलाना और उनका बहिष्कार करना देशभक्ति का शगल बन गया था, फिर चाहे अंग्रेजी कपड़ों में ब्याह रचाने आये बाराती ही हो–

फिर जाहु फिरि जाहु घर का समधिया हो मोर धिया रहिहैं कुँआरि
बसन उतारि सब फेंकहु विदेशिया हो, मोर पूत रहिहैं उघार
बसन सुदेसिया मंगाई पहिरबा हो, तब होइहैं धिया के बियाह।

जलियाँवाला बाग हत्याकांड अंग्रेजी हुकूमत की बर्बरता व नृशंसता का नमूना था। इस हत्याकांड ने भारतीयों विशेषकर नौजवानों की आत्मा को हिलाकर रख दिया। गुलामी का इससे वीभत्स रूप हो भी नहीं सकता। सुभद्राकुमारी चौहान ने 'जलियाँ वाला बाग में बसंत' नामक कविता के माध्यम से श्रद्धांजलि अर्पित की है–

कोमल बालक करे यहाँ गोली खा–खाकर
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं
कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना
करके उनकी याद अश्रु की ओस बहाना
तड़प–तड़प बृद्ध मरे हैं गोली खाकर
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर
यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना
यह है शोकस्थान यहाँ मत शोर मचाना।

कोई भी क्रान्ति बिना खून के पूरी नहीं होती, चाहे कितने ही बड़े दाव किये जाएँ। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में एक ऐसा भी दौर आया, जब कुछ नौजवानों ने अंग्रेजी हुकूमत की चूल हिला दी, नतीजन अंग्रेजी सरकार उन्हें जेल में डालने के लिए तड़प उठी। 11 अगस्त, 1908 को जब 15 वर्षीय क्रांतिकारी खुदी राम बोस को अंग्रेज सरकार ने निर्ममता से फाँसी पर लटका दिया तो मशहूर उपन्यासकार प्रेमचन्द के अंदर का देशप्रेम भी हिलोरें मारने लगा और वे खुदीराम बोस की एक तस्वीर बाजार से खरीदकर अपने घर लाये तथा कमरे की दीवार पर टाँग दिया। खुदीराम बोस को फाँसी दिये जाने से एक वर्ष पूर्व ही उन्होंने 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' नामक अपनी प्रथम कहानी लिखी थी, जिसके अनुसार–'खून की यह आखिरी बूँद जो देश की आजादी के लिए गिरे, वही दुनिया का सबसे अनमोल रतन है।' उस समय अंग्रेजी सैनिकों के पदचाप सुनते ही बहनें चौकन्नी हो जाती थीं। तभी तो सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विदा' में लिखा है–

गिरफ्तार होनेवाले हैं, आता है वारंट अभी
धक्–सा हुआ हृदय मैं सहमी, हुए विकल आशिक सभी
मैं पुलकित हो उठी यहाँ भी, आज गिरफ्तारी होगी
फिर जी धड़का क्या भैया की, सचमुच तैयारी होगी।

आजादी के दीवाने सभी थे। हर पत्नी की दिली तमन्ना होती थी कि उसका भी पति इस दीवानगी में शामिल हो, तभी तो पत्नी पति के लिए गाती है–

जागा बलम गाँधी टोपीवाले आई गइलैं...
राजगुरु सुखदेव भगत सिंह हो
तहरे जगावे बदे फाँसी पर चढ़य गइलैं

सरदार भगत सिंह क्रांतिकारी आंदोलन के अगुवा थे। उन्होंने जब भरी असेंबली में बम फेंका तो लोक लय स्वतः मुखरित हो उठी–

केड़ी माँ ने भगत नू जम्मियाँ, जंगल च शेर बुकदा
बारीं बरसी खटणा गया, खट के लिया दा माया
भगत सिंह सूरमे ने, असैंबली च बंब चलाया।

भगत सिंह ने तो हँसते–हँसते फाँसी के फंदों तक को चूम लिया था। एक लोकगायक भगत सिंह के इस तरह जाने को बर्दाश्त नहीं कर पाता और गाता है–

एक–एक क्षण विलंब का मुझे यातना दे रहा है
तुम्हारा फंदा मेरे गरदन में छोटा क्यों पड़ रहा है
मैं एक नायक की तरह सीधा स्वर्ग में जाऊँगा
अपनी–अपनी फरियाद धर्मराज को सुनाऊँगा
मैं उनसे अपना वीर भगत सिंह माँग लाऊँगा।

इसी प्रकार चन्द्रशेखर आजाद की शहादत पर उन्हें याद करते हुए एक अंगिका लोकगीत में कहा गया–

हौ आजाद तौं अपनौ प्राण कऽ
आहुति दै के मातृभूमि कै आजाद करैल्हौ
तोरो कुर्बानी हम्मे जिनगीभर नै भुलैबै, देश तोरो रिनी रहतै।

सुभाषचन्द्र बोस ने नारा दिया कि 'तुम मुझे खून दो, मैं तुझे आजादी दूँगा।' फिर क्या था पुरुषों के साथ–साथ महिलाएँ भी उनकी फौज में शामिल होने के लिए बेकरार हो उठे–

हरे रामा सुभाषचन्द्र ने फौज सजाई रे हारी
कड़ा–छड़ा पैंजनिया छोड़बै, छोड़बै हाथ कंगनवा रामा।
हरे रामा, हाथ में झंडा लै के जुलूस निकलबैं रे हारी।

महात्मा गाँधी आजादी के दौर के सबसे बड़े नेता था। चरखा कातने

द्वारा उन्होंने स्वालंबन और स्वदेशी का रूझान जगाया। नौजवान अपनी–अपनी धुन में गाँधीजी को प्रेरणास्रोत मानते और एक स्वर में गाते–

अपने हाथे चरखा चलउबै, हमार कोऊ का करिहैं
गाँधी बाबा से लगन लगउबै, हमार कोऊ का करिहैं।

पंजाबी लोकगीतों में भी यही भावना अभिव्यक्त होती है–

देख चर्खे नूं गेड़ा लोड़ नहीं तोपां दी
तेरे बंब नू चलज नहीं देणा, गाँधी दे चर्खे ने।

1942 में जब गाँधीजी ने 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का आह्वान किया तो ऐसा लगा कि 1857 की क्रांति फिर से जिंदा हो गयी हो। क्या बूढ़े, क्या नवयुवक, क्या पुरुष, क्या महिला, क्या किसान, क्या जवान....सभी एक स्वर में गाँधी जी के पीछे हो लिये। ऐसा लगा कि अब तो अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना ही होगा। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने इस ज्वार को महसूस किया और इस जनक्रांति को शब्दों से यूँ सँवारा–

बीसवीं सदी के आते ही, फिर बिगड़ा जोश जवानों में
हड़कम्प मच गया नए सिरे से, फिर शोषक शैतानों में
सौ बरस भी नहीं बीते थे सन बयालीस पावन आया
लोगों ने समझा नया जन्म लेकर सन संतावन आया
आजादी की मच गई धूम फिर शोर हुआ आजादी का
फिर जाग उठा यह सुप्त देश चालीस कोटि आबादी का।

भारतमाता की गुलामी के बेड़ियाँ काटने में असंख्य लोग शहीद हो गये, बस इस आस के साथ कि आनेवाली पीढ़ियाँ स्वाधीनता की बेला में साँस ले सके। इन शहीदों की तो अब बस यादें बची हैं और इनके चले पीढ़ियाँ मुक्त जीवन के सपने देख रही हैं। कविवर जगदम्बा प्रसाद मिश्र रचित 'हितैषी' इन कुर्बानियों को व्यर्थ नहीं जाने देती–

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा
कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमाँ होगा।

देश आजा हुआ। 15 अगस्त, 1947 के सूर्योदय की बेला में विजय का आभास हो रहा था। फिर कवि लोकमन को कैसे समझाता। आखिर उसके मन की तरंगें भी तो लोक से ही संचालित होती हैं। कवि सुमित्रानंदन पंत इस सुखद अनुभूति को यूँ सँजोते हैं–

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन्, जय गाओ सुरगण
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन
नव भारत फिर चीर युगों का तमस आवरण
तरुण–अरुण सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन
सभ्य हुआ अब विश्व सभ्य धरणी का जीवन
आज खुले भारत के संग भू के जड़ बंधन
शांत हुआ जब युग–युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की करती घोषण

देश आजाद हो गया, पर अंग्रेज इस देश की सामाजिक सांस्कृतिक–आर्थिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर गये। एक तरफ आजादी की उमंग, दूसरी तरफ गुलामी की छायाओं का डर। कवि रसूल मियाँ '15 अगस्त' की बेला पर उल्लास भी व्यक्त करते हैं और सचेत भी करते हैं–

पन्द्रह अगस्त सन सैंतालीस के सुराज मिल
बड़ा कठिन से ताल मिल
सुन ला हिन्दू–मुसलमान भाई
अपना देशवा के कर ला भलाई
तोहरे हथवा में हिन्द माता के लाज मिल
बड़ा कठिन से ताज मिलल।

आजादी भले ही मिल गई, पर देश में सांप्रदायिकता व नफरत के बीज भी बो गई। 'बाँटो और राज करो' की तर्ज पर अंग्रेजों ने जाते–जाते देश के दो टुकड़े कर दिये। आजादी के जश्न से परे महात्मा गाँधी निकल पड़े ऐसे ही दंगाइयों को समझाने पर उनकी नियति में कुछ और ही लिखा था। अंततः 30 जनवरी 1948 को गाँधी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। फिर भला लोक कवि का आहत मन भला कैसे शांत रहता–

के मारल हमरा गाँधी के गोली हो, धमाधम तीन गो
कल्हिए आजादी मिल, आज चलल गोली
गाँधी बाबा मारल गइले, देहली के गली हो, धमाधम तीन गो
पूजा में जात रहले बिरला भवन में
दुश्मनवा बैइठल रहल पाप लिये मन में
गोलिया चला के बनल बली हो, धमाधम तीन गो।
(कवि रसूल मियाँ)

आजादी की कहानी सिर्फ एक गाथा भर नहीं है, बल्कि एक दास्तान है कि क्यों हम बेड़ियों में जकड़े, किस प्रकार की यातनाएँ हमने सहीं और शहीदों की किन कुर्बानियों के साथ हम आजाद हुए। लोक साहित्य में आजादी के दिनों का सहज और स्वाभाविक चित्र देखने को मिलता है। लोक साहित्य असीम है और यह ऐतिहासिक घटनाक्रम की मात्र एक शोभा यात्रा नहीं, अपितु भारतीय स्वाभिमान का संघर्ष, राजनैतिक दमन व आर्थिक शोषण के विरुद्ध लोक चेतना का प्रबुद्ध अभियान एवं सांस्कृतिक नवोन्मेष की दास्तान है। जरूरत है हम अपनी कमजोरियों का विश्लेषण करें, तदनुसार उनसे लड़ने की चुनौतियाँ स्वीकारें और नये परिवेश में नए जोश के साथ आजादी के नये अर्थों

विश्व सुलगता जा रहा है

अचल भारती
बाँका (बिहार)

मानवता का यह राग अमर
धड़ल्ले गाया जा रहा है
कदम कदम पर किन्तु यहाँ
विश्व सुलगता जा रहा है
प्रेम क्षितिज से उठा यत्न
निष्फल लौट आ रहा है
हर दावे की कृतज्ञता में
विश्व सुलगता जा रहा है
करुणा के सिंधु तट ऊपर
क्रूर बादल छा रहा है
हिंसा की गर्जन में प्रतिपल
विश्व सुलगता जा रहा है
देखा आकाश दिल दिशा
मौसम बदल–बदल रहा है
दम्भी गर्जन–तर्जन लेकर
विश्व सुलगता जा रहा है
नाते–रिश्ते टूट चुके सब
स्वार्थ बलि ही माँग रहा है
अहर्निश की निर्ममता में
विश्व सुलगता जा रहा है
भय, शोक, भर्त्सना के द्वार
प्राणी–प्राणी सिसक रहा है
रे! घृणा–द्वेष की लघुता में
विश्व सुलगता जा रहा है
लज्जा भी लज्जित है देखो
जग मर–मरकर जी रहा है
नग्न–नीति का खुला तांडव है
विश्व सुलगता जा रहा है।

आलेख

मैं हिन्दी बोल रही हूँ

ज्ञानचंद मर्मज्ञ
बंगलुरु
मो.–9845320295

जी हाँ, आपने ठीक पहचाना, मैं हिन्दी ही बोल रही हूँ, वही 14 सितम्बर वाली हिंदी, जिसे आप पिछले 67 वर्षों से सामूहिक गुणगान के सहारे राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर आसीन करने का हृदयग्राही स्वप्न देख रहे हैं। मैं भी अजन्मी खुशियों के कई सपने उधार लेकर हर वर्ष आपके कार्यक्रम में आती हूँ, इस उम्मीद के साथ कि क्या पता मेरे अधिकार का मुकुट मेरे माथे पर लगने की बाट जोह रहा हो, मगर आपमें से कोई मुझे पहचान भी नहीं पाता। मैं सबसे पीछे की पंक्ति में अपनी 67 वर्ष पुरानी जर्जर छड़ी के सहारे खड़ी होकर आप लोगों की बातें बड़े ध्यान से सुनती हूँ। कुछ देर के लिए ही सही, मेरे शब्दों को पहनकर आपलोग अच्छे लगते हैं। आपको आँखों से देखते हुए मैं भूल जाती हूँ कि कल्पना के गोटे से जटिल राष्ट्रभाषा का स्वप्न आजादी के साथ मिला 15 वर्षों के अभिशाप का वह देश है, जिसे मैं आजतक भींग रही हूँ। आपके अधरों पर उगकर मैं यह भी भूल जाती हूँ कि जिस स्पर्श का मैं अपनी प्यास की अंतिम अभिलाषा समझ रही हूँ, वह उस छलाये का रेतीला तट मात्र है, जहाँ मैं पिछले कई वर्षों से प्यासी भटक रही हूँ। आपकी खुशियाँ मुझे अभिभूत तो करती हैं, मगर दुःख का गहन अंधकार मेरा हाथ पकड़कर उस ओर खींच ले जाता है, जहाँ किसी ने सूरज का बीज तो बोया था, पर अभी तक प्रकाश का कोई पौधा नहीं उगा। आप भी तो उसी सूरज को सींच रहे हैं। आपके उत्सव में आकर भले ही पीड़ा का आभास होता है, मगर आपके स्नेह का आचमन मेरे प्राण को एक और वर्ष जीने की ऊर्जा से अभिसिंचित कर देता है। इस तरह आपके अगाध स्नेह और दुलार के साथ एक और '14 सितम्बर' की प्रतीक्षा में वापस आकर अपनी कोठरी में पड़ी उस चारपाइ पर लेट जाती हूँ, जिसमें असंख्य कीलें गड़ी हैं।

यहाँ मैं अकेली नहीं रहती, मेरी ही तरह मेरे साथ अनेक उपेक्षित भाषाएँ अपने कल की बची–खुची साँसें सहेजते हुए भोर की लालिमा का आलिंगन करने के लिए बेचैन बिखरी पड़ी रहती हैं। मेरे कमरे में एक ही दरवाजा है, जो बाहर से बंद रहता है। यहाँ एक रोशनदान भी है, जहाँ से कभी–कभी मेरे अक्षर रेंगकर अंदर आ जाते हैं और किसी नई आशा की सुनहरी कहानी सुनकर वापस चले जाते हैं। अब तो मुझे डर भी लगने लगा है। मैं अनुवादित होते–होते थक गई हूँ। अपने ही देश में विदेशी भाषा के अनुवाद का चेहरा लगाते लगाते मेरे रूप का लावण्य धूमिल होता जा रहा है। मैं यह कृत्रिम आवरण उतारकर फेंक देना चाहती हूँ। आप सब मुझे माँ कहते हैं, मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या माँ का भी अनुवाद किया जाता है?अगर आपकी बाहरी वैचारिकता मेरी मौन संवेदना को छूकर जरा भी विचलित होती है तो बताइये कोई है?जो मुझे इस अनुवाद के कारावास से मुक्त करा सके।

विषम परिस्थितियों के ताप पर अब तो मेरे शब्द भी पिघलने लगे हैं, आये दिन उन्हें नये–नये रूप में ढाला जाता है। कई बात तो अंग्रेजी के परिधान में लपेटकर मेरा वरण किया जाता है। क्या पता कुछ वर्षों बाद मैं अपने नये रूप को देखकर कहीं स्वयं ही न डर जाऊँ और उस धूल भरे दर्पण को तोड़कर फेंक दूँ, जो पिछले 67 वर्षों से मैंने अपनी पुरानी पोटली में सँभाल कर रखा है। वैसे इस पुराने दर्पण को छोड़कर मेरे पास त्यागने को कुछ और है भी नहीं, हाँ एक आत्मा अवश्य है, जिसमें मैंने अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के अणुओं को सँभाल कर रखा है। मुझे नहीं पता स्वाभिमान के उन सपनों का क्या होगा, जो देश के बलिदानियों ने अपने लहू से सींचकर राष्ट्रभाषा के साथ जोड़कर देखा था। मुझे नहीं पता, तिरंगे के साथ चहकनेवाली राष्ट्रभाषा का गौरवशाली हुँकार कब हमारी अस्मिता के अस्तितव का राष्ट्रीय उद्घोष बनकर पूरे विश्व में आच्छादित होगा। मुझे यह भी नहीं पता कि इतने वर्षों से राष्ट्रभाषा–विहीन राष्ट्र के जागरुक लोगों के स्वाभिमान की गरिमा उनकी महात्वाकांक्षाओं के किस कोने में दबी पड़ी है, मगर अपने बच्चों में यह अवश्य कहना–मैं मन, विचार और चेतना से प्रस्फुटित होनेवाली राष्ट्र की सच्ची अभिव्यक्ति हूँ। मैं इस देश की वाणी हूँ। मुझे माँ कहनेवालो! उन्हें यह भी बताना मैं उनकी लोरी भी है और किलकारी भी। मैं ही साँसों में तरंगित होकर भावों की गति बनकर बहती हूँ। मैं ही गंगा बनकर अनगिनत लहरों में समाती हूँ और राष्ट्र–गौरव का गीत गाकर हर भारतवासी के माथे पर स्वाभिमान का तिलक लगाती हूँ। मेरे प्रवाह के आँचल में इस देश की सारी भाषाएँ तरंगित होकर आह्लादित होती हैं। उनसे यह भी कहना मुझे स्पर्श करें, मेरे होने का अनुभव करें। मेरे अंदर समाहित भारतीयता का आत्मसात् करें। बस एक बार मुझे अपने अधरों से मुखरित होने दें, मैं उन्हें राम, कृष्ण, तुलसी, रहीम, कबीर, मीरा सब दूँगी और उन्हें वहाँ तक लेकर जाऊँगी, जहाँ उनकी जड़ें अभी प्रतीक्षा कर रही है परंपराओं में गुंफित भारतीय संस्कृति के पुरातन मूल्यों के अनमोल धरोहर सौंपने के लिए।

संस्कृत के कोख से जन्मी में केवल भाषा ही नहीं, बल्कि अन्तिम सत्य की प्रस्तावना और नैतिक मूल्यों का संवाहक भी हूँ, जिसे पाने के लिए आज संपूर्ण विश्व तड़त रहा है। वैसे तड़प तो मैं भी रही हूँ, लेकिन मेरी तड़प की पीड़ा उस समय कम हो जाती है, जब आपलोग मुझे राष्ट्रभाषा का मान देकर चंदन बना देते हैं। मैं जानती हूँ मेरी राष्ट्रभाषा का स्वप्न आपका ही स्वप्न है, आपने ही उसे संजोया है और आप यह भी चाहते हैं कि मैं गर्व से कहूँ कि 'मैं राष्ट्रभाषा हिन्दी बोल रही हूँ।' मगर जबतक अधिकार का तिलक मेरे माथे पर नहीं लगता, तबतक तो बस इतना ही कह पाऊँगी कि 'मैं हिन्दी बोल रही हूँ।' इसी आशा के साथ कि जिन्हें सुनना है काश, वो भी सुन पाते।

ऐसी दुनिया

ऐसी दुनिया जनाब रखता हूँ
चाँद सूरज गुलाब रखता हूँ
पास मेरे कभी चले आना
खुद को मैं लाजवाब रखता हूँ
हार जाना मुझे नहीं आता
जिंदगी कामयाब रखता हूँ
जबसे देखा है उनकी आँखों में
तिशनगी बेहिसाब रखता हूँ
कब सवालों से यार मुँह फेरा
मैं तो सबका जवाब रखता हूँ।

तड़पते सिमटते जिये जा रहा हूँ
मगर होंठ अपने सिये जा रहा हूँ
न चाहत न दामन न दरपन न आंगन
कहाँ कुछ किसी से लिये जा रहा हूँ
लिखा था कभी नाम मैंने तुम्हारा
सनम वो हथेली दिये जा रहा हूँ
चिरागों से कह दो उजाला नहीं है
जहर तीरगी का पिये जा रहा हूँ
दुप्पटा मिला है तुझे भी किसी का
हवा के हवाले किये जा रहा हूँ

तनहा तन्हा रहता हूँ मैं
जाने क्या क्या सहता हूँ मैं
आओ बैठो तुम भी आकर
अपनी बातें कहता हूँ मैं
जब से निकला घर से बाहर
चुपके चुपके ढहता हूँ मैं
सुख दुख के ताने बाने को
खामोशी से गहता हूँ मैं
मेरी आँखों में है आँसू
पानी पानी बहता हूँ मैं।

विकास, गुलजार पोखर,
मुंगेर
9934224359

कविता

यही तो रोना है हमारा

कोई नयी बात नहीं है
इस तरह हमारा बार–बार रोना
चूँकि यही रही है
हमारे देश की परंपरा
जो सदियों से चली आ रही है
और चल रही है आज तक
कि यहाँ जाति, धर्म और
वर्ग के आधार पर दिया जाता है सम्मान
यही रही है
हमारी देशभक्ति की भावना
कि यहाँ चेहरे देखकर दिये जाते हैं
देशभक्ति के प्रमाण पत्र
गद्दार को भी कहा जाता है देशभक्त
और देशभक्त को भी
देशद्रोही करार दिया जाता है
यही तो रोना है हमारा
कि सच का मुँह काला
फिर भी झूठ का बोलवाला

मिथिलेश कुमार
सीवान (बिहार) 841232

कूड़ा बीनती लड़की

वो गोरी चिपटी
लम्बी–सी लड़की
कितनी सुंदर है
कितनी तरस आ रही है
देखकर उसे
वो सुबह–सुबह
बीन रही है
शहर के सड़क पर
कूड़े में
कुछ चीजें
चूँकि सड़क पर फैला हुआ है
कीचड़ और
फैली हुई है
ढेर सारी गंदगी
आखिर वह क्या बीन रही है
सड़क पर
कूड़े में
कीचड़ में और
गंदगी में
मुझे क्या मालूम
शायद चुन रही होगी
प्लास्टिक
लोहा
जूते–चप्पल
या कबाड़ी के सामान
जिन्हें बेचकर वह
कुछ पैसे वसूल सके
जिनसे चल सके
घर का खर्चा
मिल सके दाना पानी
और जिनसे पाल सके
वो अपना पेट
वो छोटी–सी लड़की
शायद तलाश रही है
अपनी जिंदगी
अपनी किस्मत
अपने सपने
और खुशियाँ
वो जिन्हें
कंधे पर बोरिये लेकर
जाड़े के सुबह–सुबह
बीन रही है
कूड़े के बीच
चेहरे पर एक नये मुस्कान के साथ

अल्फाज

आओ ना सुनो!
देखो यहाँ अल्फाजों का बाजार
गरम है
अल्फाजों ने जमा ली है अपनी
खुद की महफिल सतरंगी
बस अब, इनको कोई
ध्यान से सुननेवाला चाहिए
निगाहें ताकती हैं
एक दूसरे को कुछ इस तरह
की शायद अभी कोई गौर
फरमा दे उनके अल्फाजों पर
पर यहाँ तो...
जमाने भर से दबे जज्बातों ने
पहन लिया है जामा
अल्फाजों का अब तो बस उन्हें
अपनी ही कहना है
अरे कोई तो देखो ना
उसे कोने में बैठी हुई देवी को
कब से उस सुंदरी के
चेहरे के भाव आँखें होंठ
कुछ कहना चाहत हैं
बस सिर्फ एक बार मेरी भी सुन लेती
ऐसा नहीं, मेरे पास भी एक मजेदार
वाकिया है आप सबके लिए
पर इंतजार बस इंतजार
लेकिन अच्छे अल्फाजों को
बोलने के लिए
पहले सबको सुनना पड़ता होगा
वैसे बोलना तो
सभी को आता है यारो
एक मौका उसको भी देकर देखो
जो लगातार सिर्फ और सिर्फ
आपको सुन रहा था।

कल्पना मिश्रा बाजपेई

थोड़ा–सा अपनापन

मैं सोचती हूँ जब कभी
कि....
जब तू रात को मेरी गोदी में
दुबककर चैन की नींद
सो जाता है
तब तुझे मैं आंशिक रूप से
गोदी में उठाकर
कश्मीर से कन्या कुमारी तक
हर मंदिर में करवाती हूँ दर्शन
और माँगती रहती हूँ तेरे उन्नत
भविष्य की मन्नत
जब तू सोता है दुबककर
मेरी गोदी में रात को
आ जाओ अब बैठो मेरे पास
देख लूँ तुझे जी भर, जिससे मैं
जी सकूँ चैन से उम्र भर
क्योंकि मुझे मालूम है कि
संसार की आपा–धापी से तू भी
अछूता नहीं बचेगा
तू स्वस्थ रहे और व्यस्त भी रहे
इन सबके बीच में भी
मैं तलाश लूँगी अपने शकून को
बस डर तो इस बात का है कि
तू कहीं पराया न हो जाए
बच्चों का परायापन ही तो
सालता रहता है नासूर की तरह
बूढ़े माँ बाप के कलेजे को
आखिर उन्हें क्या चाहिए?

पत्थर की लकीर

मैंने धूप की बेला में
सजर ढूँढने की
कोशिश की थी
जब छाँव मिला तो
सर्द मौसम आया
जो कल था मेरे पास
वो उबाऊ था
आज जो है मेरे पास
वो बिकाऊ बन गया
बहुत कोशिश की थी
दुनिया का गम भूला दूँ
पर गम ही तो है
जो मेरा सफ़र बन गया
तुम देख लेते तो
तुम्हारे पलकों की छाँव
मिल जाती
मेरे हिस्से में अब तो
धूप ही
पत्थर की लकीर बन गई।

ज्योति सिन्हा
धनबाद

कहानी

मरकत हरापन

रजनी वर्मा बस्तरिया
सोनियाकुंज, नगर निगम कॉलोनी,
रायपुर (छ.ग.) 9301836811

जाने वह जंगल था या पेड़ों का गाँव। सारे वय के पेड़ थे वहाँ पर, बूढ़ा बरगद दादा, नन्हें सेमल, जवान मधूक (महुआ), नवयौवना शाल वृक्ष, नवप्रसूता सरगी, अधेड़ प्रौढ़ पीपल, स्थूल काया कटहल, जीरोफिगर यूकेलिप्टस और हाँ, कुछ 'दादा–टाइप' के खूँखार काँटेदार पेड़ भी थे, जिनके दोस्त बेर, बबूल थी थे। जिनकी त्याँरियाँ हमेशा चढ़ी रहती थी। जुबान (छाल) तो हमेशा फटी पड़ी रहती थी, उनमें से कुछ मुनगा, जामुन के भी निर्लिप्त पेड़ थे, जिन्हें सिर्फ अपने से मतलब था, दूसरे से नहीं।

आज उस जंगल में नया शीशु आया था शाल का। उसकी माँ ने जाने कितने जतन किये, कितने मिन्नते माँगी, कितनी पंक्षियों का आसरा दिया, कितने कीड़े–मकोड़ों को पनाह दी, तब जाकर आज उसकी गोद हरी हुई थी। आज उसी से अन्न प्राशन का उत्सव था। शाल ने सबको न्यौता हवा के मार्फत भेज दिया था। सागौन ने तो साफ साफ कह दिया था। कि भई! हम तो नहीं आयेंगे। पिछली दफा जब वन के रेंजरों ने आकर तुम्हारा नाप लिया और तुम्हें सबसे स्वस्थ शाल होने का एवार्ड दिया और मेडल की तख्ती तुम पर टाँगी गई तो कैसे इतराती फिर रही थी। मधुक ने कहा–भई! आज मेरे फलों के पककर गिरने का समय आ गया है। आदिवासी टोकनी लेकर आते होंगे। शिशु को ढेर सा आशिष और गमकनेवाला इत्र हवा के डाक से तुम्हें भेज रहे हैं। शिशु पर न्यौछावर कर बागड़, झाड़ियों पर वार देना। अन्नप्राशन की खबर सारे जीव–जन्तुओं को भी हो चली थी। गिलहरी तो कितना कमर मटका–मटका कर नाच रही थी। उसकी पूँछ के नागिन डांस का क्या कहना! जुगनुओं की पूरी जमात ने झालर जैसे अपने आपको व्यवस्थित कर शाल की डेहरी पर सजा दी थी। बूढ़े बरगद की जड़ से निकले द्रव का तिलक भी शिशु शाल के मस्तक पर कर दिया गया था। चिड़ियों ने सोहर गीत गाया, चार (चिरौंजी) के वृक्षों आम, महुआ ने कलेवा परोसा। इन सबको वह धूर्त मोटी कड़े से छालवाला वृक्ष घूरती आँखों से देख रहा था।

समय बीतता गया। शैशव साल, सागौन, सरगी, नीम, कटहल की शरारतें बढ़ती गई। ये सारे बच्चे पेड़े अपने बचपन में नटखट ही होते हैं और गौर से देखने पर मालूम पड़ेगा कि ये आपस में मिलकर किसी को सताने की साजिश रचते रहे हैं। खूब झूमते हैं, खूब मटकते हैं, पत्ती पर पत्ती मारकर खिलखिलाते रहते हैं। जब कद निकलता है, इनका तो जरा सीधे होने लगते हैं। जो खुली शाखों में मिले तो समझिये कि इनमें बचपना रह गया है। जो दोस्तों की तरह साथ बड़े होते हैं, उसे दूर से पहचाना जा सकता है। एक दूसरे की तरफ मुँह किये गपियाते रहते हैं। 'अरे इनकी पढ़ाई तो धूप के मदरसों में होती है, धूप के मदरसों में बड़, पीपल की छाँव पहाड़ा पढ़ते हैं और मौसम तो नंगे पाँव धूल उड़ाता आता जाता रहता है।

आज तो जंगल में उत्सव का सीजन शुरू हो रहा था। टेसू के गदराये यौवन का क्या कहना? ऐसी उसकी रूप की आभा निखर रही थी कि वह धूर्त पेड़ भी अश–कश उठा। गुलमोहर की हथेलियों में चट्ट नारंगी फूलों की चूड़ियाँ सज चुकी थी।

शाल के झुंड में से ना जाने उस 'कमसीन शाल' की देहयष्टि सबकी आँखों में चुभने लगी थी। गजब का निखार आ गया था उसपर। हरापन तो सभी पेड़ों में रहता है, पर उसकी हरियाली तो देखते ही बनती थीं। तीखे–तीखे शाखाएँ, सुनहरे ललछौंवे उसके पत्ते। काया तो कुंदन सी ऐसी चमक रही थी कि उस जंगल में उसे दो कोस दूर से ही पहचाना जा सकता था। हरेपन की लुनाई उस शाल के पेड़ के पूरे वजूद पर ऐसी छाई थी कि यह बात शहर तक जा पहुँची।

लगता है फारेस्ट विभाग के रेंजरों को उसी धूर्त पेड़ ने मुखबिरी कर सूचना दी होगी। फारेस्ट विभाग अगले ही दिन पूरे दल–बदल के साथ जंगल पहुँच चुका था। वह खबर सारे जंगल में आग की तरह फैल चुकी थी। कुछ लंपट झाड़ सिर उचका उचकाकर मजा लेने की खातिर आपस में भिड़े जा रहे थे। फारेस्ट का अमला जैसे ही जीप से उतरा, उनके जूतों की चर्र– चर्र ने पूरे जंगल में दहशत के बीज बो दिये, उनमें उनका दोष नहीं है। कल ही बबूल व चार (चिरौंजी) चाची की आपस चुगली हो रही थी कि उस शाल की जवानी (हरापन) तो देखो। मुस्टंडी को कितना गुरूर है, उसे अपने हरेपन पर। मरकत हरापना (बहुत हरा) लिये कैसे डोल रही है। उस जंगली छालवाले पेड़ को कैसे उसकी बदतमीजी का जवाब दिया था। भला कोई अपनी बिरादरी के साथ ऐसा करता है? आखिर रहना तो उसे जंगल में ही है ना। क्या हुआ जो उस गबरू छालवाले पेड़ ने उसे अपने पास बुलाने का भद्दा इशारा कर दिया तो। बहुत घमंड है उस मुस्टंडी को अपने 'मरकत हरेपन पे' मुस्टंडी कहीं की।

फारेस्ट आफिसर ने लपलपाती नजरों से उसके हरेपन को तौला। अमले से कहा–इसे यहाँ से उखाड़ो और दूर के उस मोटे छालवाले पेड़ के पास लगा दो। बेचारी शाल, नवयौवना पेड़ कुछ कह भी नहीं सकी। आज उसका मरकत हरापन ही उसका दुश्मन बन बैठा। वह रोई, गिड़गिड़ाई, दाँत भींचे पर कहाँ नुकीले औजारों से उसकी जड़ों को खोदकर उसो लहूलुहान कर दिया। पूरे शाल के कुनबे में चीत्कार मच गया, लगभग मरणासन्न, नवतरुणा शाल को ले जाकर उसी पेड़ की मोटी छालवाले पेड़ के बाजू में रोपा गया। शाल ने अन्न जल त्याग दिया था। उसे नई जगह फिर से उगना गवारा नहीं था। उसमें नया क्या था? आखिर हजारों पेड़ों को दूसरी जगह लगाया जाता है। आखिर वो वहाँ पनपते तो हैं ना? पर ऐसा नहीं हुआ। मरकत हरापन लिये शाल के पेड़ ने स्वयं इच्छा से भीष्म पितामह के जैसे देह त्यागने को ठान ली थी। मरकत हरापन लिये वह तिल–तिल मृत्यु शय्या पर पीली पड़ने लगी। जीवित रहने की अनिच्छा वाले बानों से उसका शरीर बिंध चुका था। 'सूर्य के मकरराशि में प्रवेश करने पर जाने किस अर्जुन की बाट जोहती, जो उसकी प्यास धरा चीरकर गंगा से बुझाता। शाल ने देह त्याग दिया।

इस घटना को कई सदियाँ बीत गई, कहते हैं कि तबसे जंगल को श्राप मिला है। यूँ कहिये पूरे मानव जाति को कि कोई भी शाल, कभी अकेला नहीं पनपेगा, ना ही कोई उसे अकेला पनपा पाएगा। आज सब यह जानते होंगे कि शाल के पेड़ को अकेले विकसित करना असंभव है। वे हमेशा छोटे–मोटे वन के रूप में ही विकसित होते हैं शालवन। वे अपने सघन समुदाय के बाहर पनप ही नहीं सकते। और अगर किसी विकसित शाल के पेड़ अन्यत्र रोप दिया तो वह एकाकीपन का शिकार होकर मर जाता है। चाहे उसमें कितना ही 'मरकत हरापन' क्यों न हो, श्रापित मानव या फिर श्रापित जंगल। सदियों से श्राप का प्रभाव जस का तस है। शाल अकेला नहीं शालवन के रूप में ही अपने मरकत हरेपन के साथ ही पनपता है और पनपता ही रहेगा सदियों तक...।

लोकवाणी

आदरणीय संपादक महोदय

अत्र कुशलं तत्रास्तु। आपकी पत्रिका सुसंभाव्य का जनवरी 2017 अंक मुझे प्राप्त हुआ। इसके लिए तहे दिल से मैं आपको धन्यवाद दे रहा हूँ। इस अंक में श्रीशैलेन्द्र अस्थानाजी का 'हिन्दी : सदियों से राज–काज में' आलेख बहुत रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगा। इससे यह ज्ञात हुआ कि हिन्दी वह भाषा है, जिसने भारतवर्ष पर राज किया। वह इतनी सरल, भाषा है कि विदेशियों ने भी इसे गले का हार बना कर इसका भरपूर प्रयोग किया। पर यह कितनी घातक बात है कि वर्षों की गुलामी के पश्चात् जब देश आजाद हुआ, तब इस भाषा को दरकिनार कर दिया गया और राष्ट्रभाषा तो क्या, इसे राजभाषा का भी दर्जा नहीं मिला है। तुच्छ तुष्टीकरण की राजनीति के तहत सत्तर वर्षों से इसका अपमान ही किया जा रहा है। इस आलेख के अलावे श्रीगोपालचन्द्र घोष मंगलम् का आलेख 'मनुवादी व्यवस्था को दोषपूर्ण किसने बनाया' भी बहुत अच्छा लगा। डॉ. आकांक्षा यादव, डॉ. मंजरी पांडेय एवं मोनिका सिंह की भी रचनाएँ प्रशंसा की पात्राएँ हैं। श्रीअभय कुमार भारती, रचना तिवारी एवं कविता विकास की कविताएँ दिल को छू गयीं। श्रीदयानंद जायसवाल द्वारा लिखित ग़ज़लकार विज्ञानव्रत की ग़ज़लों की समीक्षा पढ़कर भी अति आनंद की प्राप्ति हुई।

आशा है सुसंभाव्य के अगले अंकों में भी ऐसी ही रोचक एवं तथ्यों से ओत–प्रोत रचनाओं को प्रकाशन होता रहेगा, जिससे हम सुधी पाठकों का सांस्कृतिक मनोरंजन हो सके। आपके आनंदपूर्ण जीवन की आकांक्षा के साथ।

आपका शुभाकांक्षी

विजयवर्धन, लहेरीटोला, भागलपुर, 9204564272

आदरणीय संपादक महोदय

सादर प्रणाम,

शमीहे शमीहे। पत्रिका का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। पहला पृष्ठ आमंत्रण ही झकझोर गया, जहाँ विश्वग्राम व श्रेष्ठ आचरण की बात की गई है। हमारी सोच पहले से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की रही है, फिर हम चूके कहाँ। ये परिवर्तन एक दिन में तो हुआ नहीं है। इस विषय में पिछली पीढ़ी भी अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकती। कथनी–करनी का फर्क उपदेशों को निष्प्रभावी बनता चला गया। प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा सफल सुयोग्य पात्र, अधिकार मिलते ही अनियमित आचरण करने लगता है। जिस समाज का मेधावी वर्ग ऐसा हो, उसका कल्याण कैसे संभव है। आजकल वोट जरूर करने की अपीलें हो रही हैं, जैसे बहुत बड़ा बदलाव आनेवाला हो। चेहरे तो सारे वही हैं, बस झंडों का रंग बदल गया है। बहुत सालों पहतले 'दिनमान' में एक विचारक श्यामलाल का इंटरव्यू छपा था, जिसमें उन्होंने स्वयं को निराशावादी कहा था, तब मैक्ं उनसे सहमत नहीं था। एक कंपनी अगर कोई लिखित वादा करती है और उसपर खरा नहीं उतरती है, तो कोर्ट उसे दंडित करता है। लेकिन कोई पार्टी लिखित घोषणा–पत्र देकर बहुमूल्य वोट ले लेती है, परन्तु उसकी कोई जवाबदेही नहीं होती, ऐसे में साहित्य की कलम ही बचती है, जो जिम्मेदारियों से मुँह नहीं चुराती। हमें बेहतर समाज की कल्पना में आचरण को योग्यता पर तरजीह देनी ही होगी। पुनः ईश्वर से प्रार्थना है कि आपकी ऊर्जा व संसाधन अक्षय रहें।

रामराम सबको मेरी माँगूँ सबकी खैर
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर
ना काहू से बैर पेश हैं चुभती कलियाँ
मिर्ची मिली मिठाई जैसी ये कुंडलियाँ
इनकी गलियों में बसे सभी खास औ आम
नाम मगर सबका यहाँ लिखा है कौवाराम।

शुभेच्छु

सूर्यप्रकाश मिश्र

09839888743

आदरणीय संपादक

महोदय,

'सुसंभाव्य' का जनवरी 2017 अंक मिला। भागलपुर से प्रकाशित यह त्रैमासिक पत्रिका न सिर्फ वहाँ के बल्कि बिहार भर के साहित्यिक सन्नाटे को तोड़ती लगती है। संभावनाओं से भरी इस पत्रिका में गंभीर सामग्री है। साथ ही विचारदृष्टि की सम्पन्नता के भरपूर भी। पत्रिका का मुख्यपृष्ठ कलात्मक एवं कवितात्मक है।

आज साहित्य की चुनौतियों के बीच मानव कल्याण एवं एक सुंदर जीवन के निर्माण के लिए साहित्यकारों की भूमिका पर संपादकीय संदेश गौर करने लायक है। डॉ. अमर सिंह बधान का 'भाषा की जीवन्तता और उभरते खतरे' काफी ज्ञानवर्धक और शोधपरक है। नई आवश्यकताओं और नये माध्यमों ने हमेशा भाषा को नये रूप देने में अग्रणी भूमिका निभायी है। जब बहुत सरल स्तर पर भाषा केवल संपर्क का काम करती है, तो भावों और विचारों के संवाहक के रूप में वह सीमित किन्तु महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। लेकिन जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया, वैसे–वैसे वह न केवल साहित्य का माध्यम बनने लगी, बल्कि व्यापार और शिक्षण जैसी जरूरतों के लिए भी नया स्वरूप विकसित करने लगी। इस प्रक्रिया में कुछ भाषाएँ नये धरातल पर सशक्त होते चले गये तो संस्कृत जैसी विशाल भाषा एवं अन्य कई भाषाएँ धीरे–धीरे गतिहीनता की ओर बढ़ने लगीं। आज जब प्रौद्योगिकी ने भाषाओं के अस्तित्व के लिए नये विकल्प सामने रखे हुए हैं, तो फिर एक कड़ी चुनौती सभी भाषाओं के सामने आ गई है।

संस्मरण, समीक्षा, ललित निबंध एवं कविताएँ सभी अपनी–अपनी जगह सुंदरता लिये हैं। कहानियों के लिए कुछ और स्थान दिया जाता तो अच्छा होता। ऐसी कहानियाँ, जो साहित्य का रूप लेकर हमारे चरित्र निर्माण में सहायक हो। आज जहाँ संवेदना और संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं, वहाँ कहानियाँ जीवन में मार्गदर्शन देने का काम करती हैं।

संपादन कुशल हाथों में है, सो आश्वस्ति है कि साहित्यिक क्षिति पर पत्रिका चमकती रहेगी। 'सुसंभाव्य' परिवार को मेरी ढेर सारी कामनाएँ।

–नन्दकिशोर सिन्हा

आदर्शनगर, समस्तीपुर बिहार (मो.–08969358434)

दयानन्द बाबू और उनकी पत्रिका 'सुसंभाव्य' : मेरी नजर में

1962 ई0 से 1964 ई. तक मैं मारवाड़ी महाविद्यालय, भागलपुर का छात्र था, तत्कालीन हिन्दी के विद्वान प्रोफेसर डॉ. विष्णु किशोर झा 'बेचन' जी की 'शताब्दी' पत्रिका निकलती थी। दोनों पत्रिकाओं में अंतर देखने को मिली।

बेचनजी की 'शताब्दी' पत्रिका–

1. शताब्दी का आवरण पृष्ठ साधारण कागज के होते थे।
2. इनका आकार छोटा था।
3. रंगीन कागज के आवरण नहीं थे।
4. भागलपुर या राज्य तक ही इसे पढ़ा जाता था।
5. मूल्य देकर खरीदी जाती थीं
6. लघुकथाएँ नहीं होती थीं।

दयानन्द बाबू की 'सुसंभाव्य' पत्रिका
1 .इनका आवरण पृष्ठ आकर्षक सुंदर कागज के हैं।
2 .इनका आकार बड़ा है।
3 .रंगीन कागज के आवरण हैं।
4 .यह देश–विदेश में पढ़ी जानेवाली पत्रिका है।
5 .बिना मूल्य के लोग पढ़ते हैं।
6 .लघु कथाओं की भरमार है।

भागलपुर घंटाघर के पास चन्द्रलोक कम्पलेक्स में ज्ञान मंदिर नामक पुस्तक की दुकान में मैं बैठा था। मालिक मनोज बाबू ने एक आकर्षक पत्रिका देते हुए कहा–'यह पत्रिका आपके पढ़ने योग्य है। मैंने लिया–लुभावनी पत्रिका, कहानी, आलेख, ग़ज़ल आदि सब कुछ। मैंने पूछा–कितने रुपये देने होंगे?जवाब आया–'मुफ्त में पत्रिका दी जाती है।' मैंने कहा–'भागलपुर की भूमि में ऐसा दूसरा दानीकर्ण कौन पैदा ले लिया, जो इतनी सुंदर पत्रिका मुफ्त में बाँटते हैं। जवाब आया–'हजारों कर्ण यहाँ हैं, आप खाली जमा करते जाएँ। दयानन्द बाबू को जानते हैं, आपकी तरह ये भी शिक्षक हैं। मैंने कहा कि 1970 ई0 में माध्यमिक शिक्षक संघ, भागलपुर का मैं निर्वाचित सदस्य परीक्षा समिति का सदस्य था। भागलपुर और बाँका जिले में इस नाम के एक भी शिक्षक नहीं हैं। उन्होंने कहा–'वे बड़े साहित्यकार हैं।' मैंने कहा–'भागलपुर की धरती पर साहित्यकारों की जमात भागलपुर के भगवान पुस्तकालय अथवा हरिकुँज के चित्रशाला में होती थी। चूँकि 'बेचन' जी 1962 में मारवाड़ी महाविद्यालय के साहित्य परिषद् के अध्यक्ष थे और मैं सचिव। इस नाते जितने भी साहित्यकार–द्विजेन्द्रजी, रामेश्वर बाबू, शिवनंदन बाबू, श्रीहरि दामोदर, शिवबालक बाबू इत्यादि से मेरा परिचय था। उस समय राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी से साहित्य परिषद् की ओर से आमंत्रित किया गया था, सचिव के नाते मेरा अभिभाषण हुआ। उन्होंने पारितोषिक के रूप में अपनी पुस्तक 'कुरुक्षेत्र' मुझे दी और डेरे पर आने को कहा। उस समय चीन का आक्रमण हो चुका था, मेरा नाटक 'सपूत' महाविद्यालय में प्रथम आया। दिनकरजी ने कहा था–'लिखते रहो बड़े बनोगे।' श्रीदयानंद नाम का कोई साहित्यकार भागलपुर में नहीं हुआ। उन्होंने कहा–'इन्हें राजनेता मान लें।' मैंने कहा–'मेरा जन्म ही ऐसे परिवार में हुआ है, जिसमें मंत्री, राजमंत्री, विधायक वगैरह हैं। मुख्यमंत्री भागवत झा 'आजाद' तो घर के सदस्य थे। राजनेता में भी दयानंदजी का नाम नहीं है। मैंने पता लगाना शुरू किया तो आखिर कौन हैं ये और किस बलबूते पर हर तीन महीने में इतना खर्च करते हैं?संयोग से दयानंद बाबू का आगमन हुआ,परिचय के बाद उन्होंने आमंत्रण दिया कि मोक्षदा में 'सुसंभाव्य' वार्षिकोत्सव है, जरूर आयेंगे?

समय पर पहुँच गया और देखा कि इनकी पत्नी का बहुत सहयोग इस कार्यक्रम है। मुझे संतोष हुआ। बिना रत्नावली के तुलसी का क्या अस्तित्व?मुझे मेरी समस्या का समाधान मिल गया। जान गया मैं कि श्रीदयानन्द बाबू पत्नी के सहयोग से आगे बढ़े हैं।

ये गुलाब की तरह खिलते रहें, साहित्यिक सुगंध फैलाते रहें, स्वस्थ रहें, सानन्द रहें, मंगलमय विभु से मेरी प्रार्थना है।

"सुसम्भाव्य" निश्चित ही श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका है. जिसके सम्पादन का कार्य एक श्रेष्ठ शिक्षाविद् करते हैं इसलिये पत्रिका में समाज के महत्वपूर्ण पक्ष - शैक्षिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी का संतुलित समावेश होता है।

किसी भी साहित्यिक पत्रिका का समाज में लोकप्रिय होना सम्पादक की सम्पादन क्षमता का अभिज्ञान प्रस्तुत करता है।

सम्पादकीय किसी भी पत्रिका का मुख होता है और पाठक का पहला परिचय वहीं पत्रिका से होता है. यदि "सम्पादकीय" सहज सुबोध्य होता है तो पाठक आगे बढ़ता है।

अनेक स्थापित साहित्यिक पत्रिकाओं में सम्पादक महोदय अपनी साहित्यिक प्रतिभा प्रदर्शन हेतु शब्दसंयोजन के स्थान पर शब्दकोष से ढूढ़ ढूढ़कर ऐसे शब्दों का जाल बुन देते हैं कि पाठक उन्हे नकार कर आगे बढ़ जाता है. मेरे अपने विचार से " सुसम्भाव्य" इससे मुक्त है तो पाठक " सम्पादकीय" से ही जुड़ाव महसूस करने लगता है।

आगे अन्य पत्रिकाओं में वही स्थापित लेखकों की रचनायें होती हैं जिन्हे पाठक अन्य पत्रिकाओं में भी पढता रहता है तो पाठक के लिये नया कम ही होता है. " सुसम्भाव्य" में हर बार काफी अन्य लेखकों को पढने को भी मिलता है और समीक्षात्मक लेखन प्रचुर मात्रा होता है तो पाठक को काफी सामिग्री मिल जाती है।

अन्य नवोदित साहित्यिक पत्रिकाओं में-
लेखन छपता ही नहीं, संकट से हो ग्रस्त,
कवि सम्पादक बन गये, हो चहुं दिसि से पस्त।।
को रेखांकित करते हुये सम्पादक जी की ही रचनायें काफी संख्या में होती हैं. इससे पाठक ऊब होती है. " सुसम्भाव्य" इससे मुक्त है।

"सुसम्भाव्य" की यात्रा यदि इसी साहित्यिक मानदंडों से युक्त पथ पर चलती रहेगी तो पत्रिका साहित्यिक क्षेत्र महत्वपूर्ण स्थान पर पदारुढ रहेगी।

शुभकामनायें।

मनोरंजन सहाय

सुसंभाव्य साहित्य की दिशा दृष्टि बनती जा रही है।एक दिन ऐसा होगा कि सभी सुधीजनों के हाथों में यह सुसंभाव्य होगी।सुसंभाव्य जीवन जगत की सुंदर संस्कृति संस्कार का नया आयाम है जिसने जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ सुंदर एवं सामाजिकता के लिये सहज सुलभ है उसकी स्थापना का संकल्प लिया है।आप पाठकों एवं आमजनों के सहयोग से ही यह सुसंभाव्य साहित्य के क्षेत्र में अपनी दमदार भूमिका से आगे निकलती जायेगी।यह नवीनता जीवंतता सरसता एवं समरसता की मीठी खुशबू है जो आदमी के अंदर की फूहड़ता को दूर कर क्षरित होते मूल्यों को बचाने की मुहिम में खड़ी है।यह सुसंभाव्य राष्ट्रीय अस्मिता मानवीय धर्मिता की रक्षा में लगी हुई है।साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं दर्शन भी है साहित्य साधन नहीं साधना है इसी महान मिशन को ध्यान में रखते हुये महान साहित्यधर्मी सुसंभाव्य के संस्थापक सह प्रधान संपादक दयानन्द जायसवाल जी ने इस सुसंभाव्य को नयी जमीन व नया आकाश देने को निरन्तर प्रतिबद्ध हैं।
उनके इस महान मिशन की सफलता की शुभकानाएं व्यक्त करता हूँ।

डॉ अश्विनी

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303